मणि-माला

(सामाजिक और पारिवारिक मनोहर कहानियाँ)

अनुवादकर्ता

रूपनारायण पाण्डेय

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

१९२६

म संस्करण] [मूल्य २॥)

सूची

कहानी | | पृष्ठाङ्क

वक्तव्य

श्रीयुत प्रभातकुमार मुखोपाध्याय बैरिस्टर बँगला भाषा में 'कहानियाँ' लिखने में सिद्धहस्त समझे जाते हैं। 'एम्पायर' पत्र की राय है कि उनकी कहानियाँ पढ़ने में टाल्स्टाय और स्काट की रचना का आनन्द मिलता है। डाक्टर रवीन्द्रनाथ ठाकुर उन्हें इस काम में सव्यसाची अर्जुन समझते हैं। लिखते हैं, प्रभात बाबू के तीर (कहानियाँ) सूर्य-किरणों के समान छोटे, प्रभावशाली और लक्ष्य पर पहुँचनेवाले होते हैं।

प्रभात बाबू की कहानियों का आनन्द हिन्दी-पाठकों को मिल चुका है। उनकी कई पुस्तकों का अनुवाद इंडियन प्रेस, लि०, से निकल चुका है। यह उनकी 'गल्पाञ्जलि' का अनुवाद है। आशा है, पाठकगण, इस पुस्तक को भी पढ़कर आनन्द-प्राप्ति के साथ ही ज्ञानोपार्जन कर सकेंगे।

अनुवादक

मणिमाला

बाल्यबन्धु

१

पूस का महीना था। ठीक सन्ध्या के समय एक आदमी कालीघाट की ट्राम से भवानीपुर-थाने के सामने उतर पड़ा। उसके सिर पर अलबर्ट-फ़ैशन के बाल, बदन पर बादामी रङ्ग का दुशाला, पैरों में फूलदार मोज़ों के ऊपर पम्प-शू और हाथ में चाँदी की मूठ का बेत था। अवस्था तीस के लगभग होगी।

दस मिनट तक टहलकर वह आदमी महल ऐसे एक बड़े मकान के दरवाज़े पर गया। दरबान से पूछा – बाबू साहब हैं?

दरबान ने अपनी घनी दाढ़ी में उँगली चलाते हुए आधे मिनट तक बाबू की तरफ़ देखकर कहा—नहीं।

"कहाँ गये हैं?"

दरबान ने बात मानो सुनी ही नहीं। वह पास बैठे हुए रोटी बनानेवाले ब्राह्मण से बातें करने लगा। बड़े आदमियों के

घरों पर जो लोग मोटरकार, जोड़ी-गाड़ी अथवा कम से कम अपनी टमटम पर चढ़कर जाते हैं उन्हें देखकर दरबान लोग उठकर खड़े हो जाते हैं, सलाम करते हैं। जो लोग किराये की गाड़ी पर जाते हैं उनकी भी थोड़ी-बहुत ख़ातिर होती है। लेकिन जो लोग पैदल पहुँचते हैं उनको तो वे लोग गिनते ही नहीं।

उस आदमी ने थोड़ी देर ठहरकर फिर कहा—अजी दरबानजी, बाबू कहाँ हैं?

बाबू का विनीत भाव देखकर दरबान को दया आई। उसने कहा—बाबूजी मैदान में हवा खाने गये हैं। क्यों, क्या कुछ काम है?

"हाँ, बहुत ज़रूरी काम है।"

"आप कौन हैं?"

"बाबू हमको पहचानते हैं।"

"बैठिएगा, आइए," कहकर दरबान भैया आगे-आगे चले और आनेवाले बाबू पीछे-पीछे गये। बाग़ नाँघने के बाद बाहरी बैठक का बरामदा मिला। उसकी एक ओर एक कमरा था और दूसरी ओर दूसरे खण्ड पर जाने के लिए सीढ़ियाँ थीं। कमरे से एक कुर्सी निकालकर दरबान ने बाबू को उसी बरामदे में बिठलाया। बाबू ने पूछा—बाबू को आने में देर होगी?

"नहीं, अब आते ही होंगे," कहकर दरबान अपने काम पर चला गया।

बीस मिनट के लगभग अपेक्षा करने पर घर के मालिक बाबू हवाखोरी करके लौट आये। उन्हें देखकर वह आदमी उठ खड़ा हुआ। घर के मालिक ने कहा—कौन ?

क्षीण स्वर में उत्तर मिला—मैं।

आनेवाले बाबू के पीछे की ओर रोशनी हो रही थी। घर के मालिक उसी अस्पष्ट मुख की ओर ताकने लगे। तब आगन्तुक ने कहा—मोहन दादा, आपने मुझे नहीं पहचाना ?

मोहन बाबू कह उठे—मदन ? आओ, आओ। कब आये ?

"अभी थोड़ी देर हुई।"

"चलो, ऊपर चलो।"

मदन का हाथ पकड़कर मोहन उसे ऊपर ले गया। बिजली के प्रकाश से जगमगा रहे खूब सजे हुए कमरे में जाकर दोनों आदमी बैठ गये। नौकर ने आकर मोहन के पैर से जूते उतारे और स्लीपरें पहना दीं; अलस्टर खोलकर अलवान ओढ़ा दी; शाल की पगड़ी सिर पर से उतारकर अलग रख दी।

अब मोहन और मदन से इस प्रकार बातचीत होने लगी—

मोहन—मदन, कहो क्या ख़बर है ? बहुत दिनों से तुम यहाँ आये ही नहीं। शायद हम लोगों की याद कभी नहीं आती। दो-तीन साल हुए, जब से तुम्हारा यहाँ आना नहीं हुआ। कालीघाट से लौटते हुए तुम अपनी स्त्री और लड़की के साथ यहाँ आये थे। लड़की कैसी है ?

"अच्छी है उसके ऊपर एक लड़का भी हुआ है ।"

"बड़ी ख़ुशी की बात है। लड़का कितने दिन का हुआ?"

"दो साल का होगा।"

"वाह! यह ख़बर तक तुमने मुझको नहीं दी। एक दिन वह था जब दिन में एक बार देखे बिना न तुमको चैन पड़ती थी न मुझको, लेकिन आज तुम मुझे इतना भूल गये कि ऐसी ख़ुशी के समय भी नहीं याद किया। इस घर के हर एक कमरे, दालान और अस्तबल तक में हम लोग खेला करते थे। बाप रे, हम लोग कैसे ऊधमी थे।"

इतना कहकर मोहन ज़ोर से हँसने लगा।

मदन ने उस हँसी में शामिल होने की चेष्टा करके कहा—और आज मुझसे दरबान ने पूछा—'बाबू आप कौन हैं?'

"उसका क्या अपराध! तुम इधर बहुत दिनों से आये ही नहीं। वह बेचारा अभी एक साल से यहाँ नौकर है। ख़ैर, इस बात को जाने दो। तुम्हारी स्त्री तो अच्छी हैं? चाय पियोगे?"

मोहन ने नौकर से चाय लाने के लिए कहा। चाय आ गई।

चाय पीते-पीते मोहन ने पूछा—इस समय भी बराबर वैसे ही ज़ोर-शोर से नशेबाज़ी चल रही है?

मदन ने लज्जा से सिर नीचा कर लिया।

मोहन ने गम्भीर भाव से कहा—देखो मदन, इस आदत को छोड़ दो। अब तुम सयाने हुए, छोकरे नहीं हो। लड़के-

वाले भी हैं। जो हो गया सो हो गया—अब तो सँभल जाओ। एकदम न छोड़ सको तो धीरे-धीरे कम करके छोड़ दो।

मदन ने व्याकुल दृष्टि से देखकर कहा—देखो मोहन दादा, मैं क्या छोड़ना नहीं चाहता ? लेकिन उसे छोड़ना मेरी शक्ति के बाहर हो गया है। हर साल तीन मर्तबा—एक बार अँगरेज़ी साल के आरम्भ में, एक बार वैक्रमीय संवत् के आरम्भ में, और एक बार अपने जन्मदिन में—प्रतिज्ञा करता हूँ कि शराब को हाथ से न छुऊँगा। प्रतिज्ञा करने के बाद कुछ दिनों तक अच्छी हालत रहती है। उसके बाद फिर न-जाने कौन शैतान—

इतना कहकर मदन ने सिर झुका लिया।

थोड़ी देर तक दोनों चुप बैठे रहे। अन्त को मोहन ने कहा—देखो, तुम अगर छोड़ना चाहो तो केवल यह प्रतिज्ञा करने से ही कुछ न होगा कि अब शराब न पियूँगा। असल में तुम्हें वह सोहबत भी छोड़नी पड़ेगी। यह बात सर्वथा असाध्य और असम्भव है कि तुम उस सोहबत में रहकर अपनी प्रतिज्ञा का पालन कर सको। वह सोहबत छोड़ो।

मदन ने कहा—ज़रूर छोड़ दूँगा। एक हफ़्ते से उधर गया ही नहीं। मैंने एक सप्ताह से शराब को छुआ तक नहीं। लेकिन यह ठीक नहीं कह सकता कि अबकी प्रतिज्ञा निभ जायगी अथवा और दफ़े का ऐसा हाल होगा। मुझे अब अपने ऊपर विश्वास नहीं रहा। मैंने अपने को ऐसा

परवश कर दिया है, यह सोचकर मुझे कभी-कभी बड़ा कष्ट पश्चात्ताप होता है। दिन-रात में १५, १६ दफ़े चाय पीता हूँ। तुमने अभी चाय पिलाई, अब तबीयत ज़रा ठीक है। अब शराब छोड़े बिना काम नहीं चल सकता। भरी नाव डूबने पर है।

"यानी ?"

"तीनों मकान कई साल से महाजन के यहाँ गिरवी हो गये हैं। उन्होंने नोटिस दिया है कि अगर एक महीने के भीतर उनका रुपया न चुका दूँगा तो वे मकानों पर कब्ज़ा कर लेंगे।"

मोहन ने उदास भाव से पूछा—सूद और असल मिला-कर कितना रुपया हुआ ?

"बीस हज़ार से भी ऊपर।"

"अयँ ?—कहते क्या हो ?—इन दो-तीन वर्षों में यह करतूत कर बैठे ?"

मदन चुप रह गया। थोड़ी देर के बाद कहा—और एक पियाला चाय मँगाओ भाई—सरदी ज्यादा है।

मोहन ने नौकर को बुलाकर चाय लाने का हुक्म दिया। उसके बाद कहा—अब उपाय क्या है ?

मदन ने काँपती हुई आवाज़ में कहा—भाई, उपाय तुम्हीं हो। इसी से आज तुम्हारे पास आया हूँ। तीन साल से इधर के रास्ते से नहीं चला—आज आया हूँ। तुमने तो

लड़कपन से मेरे सैकड़ों अपराध क्षमा किये हैं। मुझे रुपये उधार दो तो मैं अपने मकानों को बचा लूँ। नहीं तो मैं किसी काम का न रहूँगा। बाल-बच्चे लेकर पेड़ के नीचे आश्रय लेना पड़ेगा।

इतना कहकर मदन ने सिर नीचा कर लिया। टप्-टप् करके उसकी आँखों से आँसू गिरने लगे। मोहन ने दूसरी ओर मुँह फिरा लिया।

चाय आई। उसे पीते-पीते मदन अपने लड़कपन के साथी मोहन के मुँह की ओर ताककर उसके दिल को टटो-लने की चेष्टा करने लगा। मोहन कुछ अनमना सा जान पड़ा।

चाय पी चुकने पर मदन ने कहा—मोहन दादा, तो क्या कहते हो? मैं ख़ाली हाथ-पैरों पर आप से ऋण लेना नहीं चाहता। तुम्हीं उन मकानों को रेहन रखकर रुपये दे दो।

वह आकुल दृष्टि से मोहन की ओर देखने लगा।

मोहन ने मुँह फिराकर धीरे-धीरे कहा—एक गढ़ा खोदकर दूसरा गढ़ा पाटने से क्या लाभ? इससे बेहतर यह है कि एक किराये पर उठनेवाली हवेली बेच डाली जाय।

मदन ने कहा—लेकिन उससे ऋण न अदा हो सकेगा दादा। किराये पर उठनेवाली दोनों हवेलियाँ बेचने से क़र्ज़ अदा हो सकता है। बल्कि हज़ार-पाँच सौ रुपये बच भी रहेंगे। लेकिन उसके बाद? दोनों मकानों के किराये से

मेरा गृहस्थी का सारा खर्च चला जाता है। मैंने तो प्रतिज्ञा कर ली है कि यह गोलमाल मिट जाने पर मैं अपना बाप-दादे का रोज़गार शुरू कर दूँगा। पिताजी तो यही दलाली का रोज़गार करके महीने में हज़ार-डेढ़ हज़ार रुपये पैदा करते थे। वे जिन हाउसों में काम करते थे उन हाउसों के साहबों से एक दिन मैं मिल भी आया हूँ। पिता का नाम सुनकर उन सबने मुझे उत्साह दिया है। तो भी अनिश्चित के ऊपर भरोसा कर लेना ठीक नहीं। मान लो, मैं दो दिन के बाद मर जाऊँ तो मेरे बाल-बच्चे क्या खायँगे? जब तक दोनों घर मेरे हैं तब तक मोटी रोटी और मोटे कपड़े के लिए मेरे परिवार को किसी के गले न पड़ना होगा। इसके सिवा और एक बात है। पिताजी नगद जो छोड़ गये थे वह सब मैंने उड़ा डाला; अब रहे-सहे दोनों घर भी हाथ से निकल जायँगे तो मैं तो कहीं का न रहूँगा।

"सो तो ठीक है" कहकर मोहन घड़ी की ओर ताकने लगा। कुर्सी पर कभी इस तरफ़ और कभी उस तरफ़ करवट बदलने लगा। जान पड़ा, जैसे एक प्रकार की बेचैनी है।

"तो क्या कहते हो? रुपये दोगे?"

"अयँ?—रुपये?" कहकर मोहन फिर घड़ी की ओर देखने लगा। दीवार के पास एक मेज रक्खी थी। मोहन ने उठकर उसकी दराज़ खोली और हाथ डालकर उसमें जैसे कोई चीज़ खोजने लगा। अन्त को उससे एक चिट्ठी

निकालकर उसे मन लगाकर पढ़ने लगा। चिट्ठी पढ़ना समाप्त होने पर नौकर को बुलाकर कहा—गाड़ी जोतने को कहो। सेठ गुलाबराय के यहाँ दावत में जाना है।

अब तक उदास भाव से मदन उत्तर की प्रतीक्षा कर रहा था। उसने फिर कहा—दादा, क्या कहते हो? आपकी क्या यही इच्छा है कि दोनों घर बेचकर देना चुका दूँ, बाक़ी रुपये लगभग साल भर में उड़ा दूँ, उसके बाद भूखों के मारे क़ुलीगीरी करूँ?

मोहन ने दूसरी ओर देखते-देखते कहा—कितने रुपये बतलाये?

"इक्कीस हज़ार रुपये देना चुकाने के लिए और चार हज़ार रुपये दलाली का रोज़गार जमाने के लिए दरकार हैं। कुल पचीस हज़ार रुपये चाहिएँ।"

मोहन केवल "हूँ" करके रह गया।

"भाई, तुम मेरे बचपन के साथी हो। मैं क्या तुमसे इतने उपकार की भी आशा नहीं कर सकता? बैंक में तुम्हारे कई लाख रुपये पड़े सड़ रहे हैं। चार-पाँच रुपये सैकड़े से अधिक सूद भी तुमको नहीं मिलता। मेरे महाजन एक रुपया सैकड़ा माहवारी सूद लेते हैं। मैं वही सूद तुमको दूँगा। हर साल का सूद असल में शामिल होता जायगा। मेरे तीनों मकानों की जो जमा मिलेगी उतनी रक़म दस बरस का सूद और असल मिला-कर भी न होगी। तुम्हारा रुपया मारा न जायगा भाई।"

मोहन अपने नौकर को बुलाकर न्योते में पहनकर जाने-वाले कपड़े निकालने का हुक्म देने लगा।

उसका रंग-ढंग देखकर अन्त को मदन ने कहा—देखो मोहन, तुम जो सोच रहे हो वह मैं समझ गया। तुम सोच रहे हो कि इतने रुपये ऐसे फ़जूलखर्च आदमी को दे दूँ तो उनका वसूल होना कठिन हो जायगा। नालिश करके मकान नीलाम कराना भी अच्छा न मालूम पड़ेगा। लड़कपन के साथी का घर बिकवा लेने से लोग क्या कहेंगे! अच्छा भाई, मैं एक प्रस्ताव करता हूँ। मैं तीनों घर पाँच साल की म्याद पर तुम्हारे पास रेहन रखता हूँ। पाँच बरस के बाद मकान तुम्हारे हो जायँगे। मैं पाँच साल के भीतर तुम्हारा सूद और असल चुका दूँगा तो मकान मेरे रहेंगे, और अगर न चुका सकूँ तो तुम्हारे हो जायँगे। डिक्री जारी कराने का झगड़ा न रहेगा। क्या कहते हो?

इतनी देर में मोहन का अन्यमनस्क भाव मिटा। नौकर ने कहा—'सब पोशाक निकाली रक्खी है।' मोहन ने कहा—'अभी थोड़ी देर है।' दरबान ने आकर ख़बर दी—'गाड़ी जुती तैयार है।' मोहन ने कहा—'आध घण्टा ठहरो।' मदन को भरोसा हुआ।

आध घण्टे तक दोनों आदमियों में बातचीत होती रही। मोहन ने रुपये देना स्वीकार कर लिया।

मदन ने कहा—मोहन दादा, मैं दलाली करके जितना रुपया पैदा करूँगा उससे यह ऋण चुकाऊँगा। गृहस्थी का

खर्च दोनों मकानों के किराये से चला लूँगा। मुझे पूरी आशा है कि तीन साल के भीतर ही, चाहे जिस तरह हो, मैं रुपया अदा कर दूँगा। तथापि और दो साल की मुद्दत लेता हूँ। बस, अब मैं ख़ूब सीख गया। आज से मैं शराब को गोरक्त, ब्रह्मरक्त के बराबर समझूँगा। मैं अपने कान पकड़ता हूँ, अब शराब की राह न चलूँगा। जिस तरफ़ शराब की दूकान होगी उस तरफ़ पैर न रक्खूँगा। और एक पियाला चाय मँगाइए।

एक ही सप्ताह में सब ठीक-ठाक हो गया। तमस्सुक की भी रजिस्ट्री होगई।

२

पाँच साल बीत गये।

बड़ बाज़ार की एक गली के भीतर एक मध्यमश्रेणी का दोमञ्ज़िला मकान है। यह मदन के बाप-दादे के रहने का घर है।

पूस का महीना है। नव बज गये हैं। ऊपर के खण्ड में एक कमरे में ज़मीन पर टूटी खाट पर मैले बिछौने बिछे हैं। उस पर मदन की स्त्री चम्पा अपने बीमार बच्चे को गोद में लिये बैठी है। एक नव वर्ष की बालिका, छींट की दुलाई ओढ़े, कमरे में इधर-उधर घबराई हुई घूम रही है और बीच-बीच में माता के पास आकर कहती है कि क्या खाऊँ?

कमरे में दीन दशा का पूरा प्रभाव देख पड़ता है। नाम चम्पा होने पर भी उसका रङ्ग काला पड़ गया है। शरीर में कहीं सोने का छल्ला तक नहीं। लेकिन पहले सोने के ज़ेवर थे। उनके स्याह निशान अभी शरीर पर बने हुए हैं और किस तरह एक-एक करके वे गहने उतारे गये, इसका इतिहास भी उस अभागिन के हाथ-पैर और पेट-पीठ पर अङ्कित है। यहाँ तक कि आख़िरी मर्तबा की चोट का घाव अभी अच्छी तरह सूखा नहीं।

बालिका धीरे-धीरे रोने लगी। तब माता आँचल से उसके आँसू पोंछते-पोंछते कहने लगी—छी बेटी, कोई रोता है? ज़रा धीरज धरो; वे आते होंगे।

बालिका तनिक देर तक और घूमती-फिरती रही। बीच-बीच में वह खिड़की के पास आकर खड़ी होती और, जहाँ तक नज़र जाती थी, देखती थी कि उसका पिता आता है कि नहीं। लेकिन उसको निराश होना पड़ा।

दस बज गये। बालिका ने आकर कहा—मा, अब मुझसे रहा नहीं जाता। पिताजी कहाँ गये हैं?

"वे मकानों का किराया वसूल करने गये हैं, अभी आते होंगे। रुपया भुनाकर बाज़ार से सौदा लावेंगे। तुम्हारे लिए खाने को और बच्चे के लिए बेदाना ले आवेंगे। बस, आते ही होंगे।"

"एक पैसा दो न अम्मा, लैया लाकर तब तक खाऊँ।"

"पैसा होता तो बेटी तुझे अब तक मैं दे न देती ?" यह कहते-कहते चम्पा की आँखों में आँसू भर आये।

हाय, आज इस घर की ऐसी ही दशा हो गई है। घर में एक पैसा तक नहीं है कि भूखी बालिका उसकी लैया लाकर ही अपने पेट की ज्वाला बुझावे। किन्तु दो साल पहले इसी बालिका ने अपने टामी कुत्ते को पेट भर-भरकर रसगुल्ले खिलाये हैं।

मा को रोते देखकर बालिका बहुत घबराई। वह फुर्ती से कह उठी—नहीं मा, रहने दो। बासी लैया खाने से आँव हो जाती है। बाबूजी को आने दो, तभी खाऊँगी।

पिछले पाँच वर्षों का इतिहास यह है कि मदन ने अपने मित्र मोहन से रुपये उधार लेकर ऋण चुका दिया और दलाली का रोज़गार भी शुरू कर दिया। लेकिन इस तरह एक महीना भी नहीं बीतने पाया कि उसने 'बियर' शराब पीना शुरू कर दिया। उसके 'दोस्तों' ने उसे समझा दिया कि साहब लोग पानी की जगह बियर का इस्तेमाल करते हैं। वह एक प्रकार का पानी है, शराब नहीं। बियर पीने से प्रतिज्ञा भङ्ग न होगी। साल पूरा होने के पहले ही बियर बन्द हो गई, विलायती शराबों के पैकिङ्ग-केसों से घर भर गया। ख़ाली बोतलों को बेचकर घर के नौकर ने इतना रुपया जमा कर लिया कि उससे उसने अपनी औरत को सोने के हाथों के कड़े बनवा दिये। इस एक साल में मदन ने दलाली में

कुछ रुपया पैदा किया था। लेकिन ऋण का एक पैसा भी नहीं चुकाया।

दूसरे साल मदन का दलाली का रोज़गार शराब के प्रवाह में, जिसके गले में पत्थर बाँध दिया गया हो उस असहाय बकरी के बच्चे की तरह, डूब गया। इस साल के अन्त में रोज़गार की पूँजी में एक पैसा भी न बचा।

इसके बाद मदन ने कई महीने तक रुपया पास न रहने के कारण विदेशी का बायकाट कर दिया। कहने लगा—विलायती से देशी बहुत अच्छी होती है, इससे फेफड़ा नहीं बिगड़ता। किन्तु स्वदेशी व्रत के ऊपर सदा किसी की निष्ठा नहीं बनी रहती। पैसा होने पर विलायती और पैसा न रहने पर देसी चलने लगी।

दोनों मकानों का किराया जो आता है, वह गृहस्थी के खर्च भर को होता है। उसमें कुछ अधिक बचत नहीं होती। शराब के लिए और उसके ऊपर के खर्चों के लिए मदन धीरे-धीरे अपनी अँगूठी, घड़ी-चेन, शाल, जामेवार, यहाँ तक कि छड़ी और छाते की मूठ से चाँदी तक निकालकर बेचने लगा। धीरे-धीरे अलमारी, टेबिल, अच्छे-अच्छे लैम्प आदि भी गये। इस तरह तीसरा साल समाप्त हुआ। ऋण और उसका सूद खटमलों के वंश की तरह बढ़ने लगा।

चौथे वर्ष के आरम्भ में स्त्री के गहनों पर मदन की नज़र पड़ी। असहाय अबला ने रोक-टोक की तो बेचारी को मार खानी

पड़ी। लाचार आँसुओं से ज़मीन भिगोते हुए उसने एक-एक गहना उतारकर देना शुरू कर दिया। इस तरह पाँच साल पूरे हुए।

आज दो सप्ताह से मदन ने शराब नहीं पी। उसने स्त्री के सिर पर हाथ रखकर क़सम खाई है कि ज़िन्दगी भर अब कभी शराब नहीं पीऊँगा। महीने की पहली तारीख़ को मकानों का किराया वसूल करके महीने भर के लिए वह दाल, चावल, आटा वग़ैरह सामान ख़रीद लेता है, इसी से कल रात तक खाने की कमी नहीं रही। किन्तु आज रसोई का सामान आये बिना चूल्हा नहीं जल सकता।

गिर्जे की घड़ी में ठन्-ठन् करके ग्यारह बजे। दासी (यह बाप-दादे के समय की दासी थी; इसी से आज तक साथ दिये हुए थी) ने आकर कहा—बहू, चूल्हा सुलगाऊँ? भैया तो अभी तक नहीं आये।

चम्पा ने कहा—तब तक चलकर चूल्हा सुलगाओ।

दासी ने कहा—हाँ जी, भैया ने इतनी देर कहाँ लगाई? मुझे तो बहू, अच्छे लच्छन नहीं देख पड़ते। मालङ्गा या कोलूटोला यहाँ से दो-चार कोस तो है नहीं। सवेरे गये थे, अभी तक नहीं आये। हाथ में नगद रुपया आते ही फिर कलवरिया में घुस गये क्या? तब तो अभी वे घर नहीं आते—वही तीन-चार बजे—

चम्पा को भी मन ही मन यही खटका था। किन्तु उसने उस भाव को दबाकर कहा—नहीं-नहीं, वहाँ नहीं गये।

क्या वे जानते नहीं कि वे आवेंगे तब बच्चे को बेदाने का रस मिलेगा!

दासी ने कहा—बहू, बच्चे की तबियत अब कैसी है?

चम्पा ने कहा—अब तो हरारत नहीं जान पड़ती—सो रहा है।

दासी ने कहा—तो मैं चूल्हा जलाकर बच्चे को लिये लेती हूँ—तुम नहाकर—

दासी कहना चाहती थी कि ज़रा जलपान कर लेना। किन्तु उसे स्मरण हो आया कि घर में कुछ नहीं है। इसी से रुक गई।

जितना ही दिन चढ़ने लगा उतना ही चम्पा का खटका बढ़ने लगा। धीरे-धीरे बच्चे को तख़्त पर सुलाकर वह ख़ुद खिड़की के पास खड़ी होकर देखने लगी।

बहुत देर तक अपेक्षा नहीं करनी पड़ी। उसने देखा, लुढ़कते-पुढ़कते, झूमते हुए मदन की सवारी आ रही है। उसके दोनों हाथ ख़ाली हैं, साथ में कोई मोटिया-मज़दूर भी नहीं। जो अलवान ओढ़कर सबेरे मदन गया था वह भी नहीं है।

देखकर चम्पा को चक्कर सा आ गया, शरीर सन-सनाने लगा। गिर जाने के डर से उसने सीकचों को मज़बूती से पकड़ लिया।

मदन किसी तरह सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर आया। कमरे मे घुसकर, जेब से मुट्ठी भर पैसे और कुछ रुपये निकालकर

उसने ज़ोर से फ़र्श पर फेंक दिये। भर्राई हुई आवाज़ में कहा—"ये लो, दासी को बाज़ार भेजो। मैं सोता हूँ।" वह धड़ाम से ज़मीन पर ही गिर पड़ा। एक काँसे का गिलास रक्खा हुआ था। उसकी कगर लग जाने से एक जगह सिर फट गया। उससे ख़ून बहने लगा। "हाय हाय हाय!" कहकर चम्पा ने जल्दी से अपने शराबी स्वामी का सिर गोद में उठा लिया। बालिका जल्दी से कलसिया भर पानी ले आई। चम्पा ने अपने फटे दुपट्टे से चिट फाड़कर पानी में भिगोकर घाव पर बाँध दी। लड़की से कहा—पङ्खा लेकर हवा करो।—मदन बेहोश पड़ा हुआ था।

आध घण्टे के लगभग यों ही सेवा-शुश्रूषा होने के बाद धीरे-धीरे मदन ने आँखें खोल दीं। कुछ देर तक चुपचाप स्त्री की ओर देखकर अन्त को टूटी-फूटी आवाज़ में उसने कहा—शराबी—पति—की—सेवा कर रही हो?

चम्पा ने रोते-रोते कहा—तुमने क्यों पी? तुम तो मेरे सिर पर हाथ रखकर क़सम खा चुके थे, फिर ऐसा काम क्यों किया?

लम्बी साँस लेकर मदन ने कहा—चम्पा!

"क्या कहते हो?"

"अगर कोई किसी के सिर पर हाथ रखकर क़सम खाय और फिर उस बात का पालन न कर सके तो उसका क्या होता है चम्पा?"

"तो जिसके सिर की क़सम खाई जाती है वह मर जाता है। मैं मर जाऊँगी!"

पहले ही के ऐसे स्वर में मदन ने कहा—इसी से आज मैं आख़ीरी बोतल पी आया हूँ। केवल तुम्हीं न मर जाओगी चम्पा! तुम मरोगी—मैं मरूँगा—बच्चा मरेगा—लड़की मरेगी। हम सब मर जायँगे।

स्वामी के मुँह को हाथ से बन्द करके चम्पा ने कहा—छी-छी, ऐसी बात कोई नहीं कहता! तुम सोओ।

"ना चम्पा, इस समय यह बात कहने में कोई हर्ज़ नहीं। तुम मर जाओगी—मैं मर जाऊँगा—बच्चा मर जायगा—लड़की मर जायगी। भोजन के बिना हम सब मर जायँगे। एक काबुलिये के हाथ अलवान बेचने पर पाँच रुपये मिले थे। आठ आने की शराब पी है; साढ़े चार रुपये पास हैं। यहीं फेंक दिये थे। कहाँ हैं?"

अब मदन फ़र्श की ओर निहारने लगा।

चम्पा ने कहा—दासी ने उन्हें उठा रक्खा है—बाज़ार सौदा लेने गई है।

"मेरा बच्चा कहाँ है?—मेरी बच्ची कहाँ है?"

"दोनों दासी के साथ हैं। दोनों को खाने के लिए और रसोई का सामान वह ख़रीद लावेगी। तुम यहाँ फ़र्श पर पड़े हो, तकलीफ़ होती होगी, चलो बिछौना बिछा दूँ। उठो।"

"उठता हूँ। जब तक ये साढ़े चार रुपये हैं तब तक खाने को मिलेगा। इसके बाद भूखों मरना पड़ेगा। अन्न के लिए तड़प-तड़पकर मरना होगा। चम्पा, मेरा सर्वस्व लुट गया।—मालंगा-लेन के मकान में किराया लेने गया। किराये-दार ने एटर्नी के घर की चिट्ठी दिखलाई। उसमें लिखा है कि वह घर आज से उनके मवक्किल भवानीपुर के मोहनलाल पाठक की सम्पत्ति हो गया है। अब और किसी को मकान का किराया न देना। किराया आज से मोहनलाल लेंगे। किरायेदार ने पूछा—'क्या यह ठीक है?' मैंने कहा—'बिलकुल ठीक।' उसके बाद कोलुटोले गया। वहाँ के किरायेदार से किराया माँगा। उसने भी वैसी ही चिट्ठी निकाली। उसने भी पूछा—'क्या यह ठीक है?' मैंने कहा—'बहुत ठीक है।' मेरा सिर घूमने लगा। शराब पिये बिना ही मेरी शराबियों की ऐसी हालत हो गई। मन ही मन "बहुत ठीक, बहुत ठीक" कहता हुआ मैं एक काबुलिये की दूकान पर गया। वहाँ जाकर पाँच रुपये में अलवान बेच डाली। मैंने सोचा, अब तो भोजन न मिलने के कारण मरना पड़ेहीगा। चलूँ, आखिरी मर्त्तबा शराब तो पी लूँ। सोच-साचकर कलवरिया में घुस गया। इतने दिनों के बाद ठीक हुआ है न चम्पा? जो शराब पीता है उसका सर्वस्व क्रमशः चला जाता है—उसको रास्ते का फ़क़ीर बनना पड़ता है—भोजन के बिना उसकी स्त्री और लड़के-बाले सब

मर जाते हैं, क्यों न चम्पा? यह बहुत ठीक है—बिल्कुल ठीक है।"

मदन की आँखों से आँसुओं की धारा बह चली।

चम्पा का गला रुँध आया। उसने स्वामी के आँसू पोंछते-पोंछते कहा—छी, ऐसी बात तुम क्यों कहते हो? सर्वस्व गया तो गया, तुम अच्छे रहो, अच्छे रास्ते पर चलो, फिर सब हो जायगा। उठो, बिछौने पर चलो। कुर्ता उतार डालो, भीग गया है।

मदन असहाय बच्चे की तरह स्त्री का सहारा लेकर पलँग पर गया। कपड़े बदलकर लेट गया। इसके बाद उसने कहा—यह घर छोड़ देने के लिए भी वह नोटिस देगा। यह घर भी उसी का हो गया है। उसके बाद पेड़ों के नीचे पड़े-पड़े भोजन के बिना तड़प-तड़पकर हम लोग मरेंगे।

"नहीं जी, इसके लिए तुम चिन्ता न करो। घर छोड़ देना होगा तो छोड़ देंगे। देस में जाकर रहेंगे।"

"देस में एक टूटा-फूटा मकान है, लेकिन रोज़गार या गृहस्थी तो नहीं है। वहाँ खायँगे क्या?"

"इसके लिए तुम चिन्ता न करो। भगवान् के राज्य में सबको भोजन मिलता है। पेड़ों पर के पक्षियों को, जङ्गल के पशुओं को, जल की मछलियों को जो आहार देता है वह क्या हमको भूखा रक्खेगा? कभी नहीं।"

मदन आँखें बन्द किये कुछ देर तक सोचता रहा। उसके बाद धीरे-धीरे बोला—वृक्षों पर के पक्षी और जंगल के पशु क्या शराब पीने के लिए औरत के गहने उतरवा लेते हैं?

"यह सच है कि वे ऐसा नहीं करते। लेकिन अभी कुछ नहीं बिगड़ा। तुम अब शराब न पीना—तुम सुमार्ग पर चलो, फिर सब कुछ हो जायगा। आज पाँच बरस से सबेरे-शाम नित्य ठाकुरजी के आगे प्रार्थना की है, न-जाने कितनी मानता मानी हैं कि तुम्हारी सुमति हो। यह मेरी प्रार्थना क्या निष्फल जायगी? 'इतने कष्टों के बाद भी क्या देवता हमारी ओर न देखेंगे? तुम भगवान् को पुकारो, वे अवश्य तुम पर दया करेंगे, फिर सब हो जायगा। मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, चिन्ता करके तबियत न ख़राब करो। ज़रा सो रहो। जान पड़ता है, दासी आ गई। नीचे उसकी आहट जान पड़ती है। तुम सो जाओगे तब मैं रसोई बनाने जाऊँगी। सो रहो।"

मदन ने कातर भाव से कहा—मेरे सिर के भीतर आग जल रही है—मुझे नींद कहाँ—

"ज़रूर नींद आवेगी। तुम चिन्ता छोड़ दो। लड़की खाकर आती है, वह आकर तलवे सहलावेगी। तब तक मैं एक हाथ तुम्हारे सिर पर फेरती हूँ और दूसरे हाथ से पंखा करती हूँ।"

चम्पा वही करने लगी।

कुछ देर बाद मदन ने फिर आँखें खोलीं। स्त्री के मुख की ओर कुछ देर ताककर उसने कहा—चम्पा!

"क्या?"

"मैंने तुमको कई बार मारा है—जूता तक मारा है। तुम क्यों मेरी सेवा करती हो?"

मुसकाकर चम्पा ने कहा—क्यों सेवा करती हूँ?—ख़ूब करती हूँ। जाओ, मेरी ख़ुशी।

उसने झुककर स्वामी का मुँह चूम लिया।

मदन सो गया।

३

तीसरे पहर एटर्नी के दफ़्तर से मदन के नाम चिट्ठी आई कि उनका रहने का घर आज से मोहनलाल की सम्पत्ति है। आज से एक सप्ताह के भीतर घर ख़ाली करना होगा।

वह रात उन दोनों स्त्री-पुरुषों ने किस तरह बिताई, इसका वर्णन करना व्यर्थ है।

दूसरे दिन सबेरे चम्पा ने स्वामी से कहा—देखो, एक बार भवानीपुर जाकर मोहनलाल से मिलो न?

"उससे क्या फल होगा?"

"देखो, वे तुम्हारे बचपन के मित्र हैं। अपने पचीस हज़ार रुपयों के लिए इस तरह हमारा सर्वनाश करने पर उतारू हो जायँगे—इस बात पर मुझे तो विश्वास नहीं होता।

मुझे जान पड़ता है कि तुमको धमकाने के लिए ही उन्होंने ऐसा किया है। तुम जाकर ज़रा ख़ुशामद करोगे तो वे शायद और कुछ मुद्दत बढ़ा देंगे।"

मदन ने मुँह बनाकर विद्रूप के ढँग पर कहा—हुँ:, बचपन का मित्र! वह है रोज़गारी आदमी, रुपया ही उसका ध्यान है—रुपया ही उसका देवता है। लड़कपन का मित्र! पाँच साल पहले जब मैं रुपये लेने गया था उसी समय उस मित्रता का परिचय पा गया था। रुपये देने का नाम सुनते ही जैसे चक्कर आ गया—छटपटाने लगा। अन्त को जब मैंने 'आई गई' की शर्त सुनाई तब चट राज़ी हो गया। तुम भी कैसी नासमझ हो, अमीर और ग़रीब की दोस्ती ही क्या?

चम्पा ने आँचल के सिरे खोंटते-खोंटते तनिक सोचकर कहा—लोग कहते हैं, लड़कपन की मित्रता ही मित्रता है। तुम शायद उनके प्रति अविचार कर रहे हो।

मदन ने कहा—हुँ: मित्रता! एक समय मित्रता थी। वह मित्रता रुपयों की थैलियों के नीचे कुचलकर कबकी मर गई!

चम्पा चुप रही। धीरे-धीरे उसकी आँखों में आँसू भर आये। यह देखकर मदन को दु:ख हुआ। उसने कहा—अच्छा, तुम कहती हो तो एक बार जाऊँगा। जाकर कहूँगा। मुहलत देने की प्रार्थना करना व्यर्थ है। मैं इतना रुपया

कहाँ पाऊँगा जो साल दो साल में ऋण चुका सकूँ। देखूँ, अगर दोनों किरायेवाले घर लेकर वह सन्तुष्ट हो जाय—यह घर छोड़ दे तो यही बहुत है।

जाने के लिए मदन तैयार हो गया।

चम्पा ने कहा—ज़रा जलपान करके जाओ। कल रात से तुमने कुछ नहीं खाया।

वह दो पेड़े और गिलास भर पानी ले आई।

बक्स खोलकर चम्पा ट्राम के किराये के लिए पैसे निकालने लगी।

"और कितना है?"

"सवा तीन रुपये।"

"रहने दो, ट्राम की ज़रूरत नहीं। ठण्डक है; पैदल ही चला जाऊँगा।"

चम्पा ने लम्बी साँस लेकर बक्स बन्द कर दिया।

मदन जब पैदल चलकर भवानीपुर में मोहनलाल के फाटक के सामने पहुँचा उस समय नव बज गये थे। दरबान से मालूम हुआ कि मोहनलाल घर ही में हैं। बहुत कहने-सुनने पर वह मदन के आने की ख़बर देने गया। थोड़ी देर बाद मदन की पुकार हुई।

मोहन उस समय नीचे के खण्ड में बरामदे के किनारे वाले कमरे के भीतर टेबिल के सामने बैठा अख़बार पढ़ रहा

था। पास ही आधा पियाला ठण्डी चाय पड़ी हुई थी। पियाले पर दो-तीन मक्खियाँ चक्कर काट रही थीं।

मदन को भीतर आते जानकर भी पहले मोहन अखबार पढ़ता ही रहा। थोड़ी देर तक अपेक्षा करके मदन ने कहा—मोहन दादा।

तब मोहन ने अख़बार से दृष्टि हटाई। उसने देखा, मदन के पहनाव में अब वह सँवार-सिंगार नहीं है। रूखे बाल इधर-उधर छितरा रहे हैं। दाढ़ी के बाल भी बढ़े हुए हैं। एक बदरंग कोट पहने हुए हैं और उस पर एक पुराने ज़माने का शाल पड़ा हुआ है। चेहरा उतरा हुआ है, आँखें धँस गई हैं। शरीर में वह लुनाई नहीं है।

"कौन? मदन—बैठो।"

एक कुर्सी घसीटकर उस पर मदन बैठ गया। मोहन फिर अखबार पढ़ने लगा। मदन चुपचाप अपेक्षा करने लगा।

इसी तरह पाँच मिनट बीत गये। तब मोहन ने अख़-बार को टेबिल के ऊपर फेंककर स्थिर दृष्टि से मदन की ओर देखकर कहा—कहो, कैसे आना हुआ?

"मैं किसलिए आया हूँ, यह क्या तुम नहीं जानते? पहले तो तुम मेरे मन का हाल समझ ले सकते थे!"

मदन को मोहन के ओठों के भीतरी भाग में विद्रूप की हँसी की एक रेखा सी देख पड़ी। किन्तु शायद यह मदन

का भ्रम हो। उत्तर में मोहनलाल ने दूसरा ही प्रसङ्ग छेड़ दिया। पूछा—बाल-बच्चे तो सब अच्छे हैं ?

"हाँ, अच्छे हैं। आज इन्हीं के लिए आपका दरबार करने आया हूँ, अपने लिए नहीं।"

"मामला क्या है ?"

"तुम नहीं जानते कि मामला क्या है ?"

"तुम्हारे कहे बिना मैं कैसे जान सकता हूँ ?"

"क्या मेरे तीनों मकान चले जायँगे ?"

मोहन ने भौंहें सिकोड़कर बिल्कुल अनजान की तरह कहा—कौन घर ? कहाँ चले जायँगे ?

मदन से अब रहा न गया। अपने को न सँभाल सकने के कारण उत्तेजना के स्वर में उसने कहा—बहुत बनो नहीं ! कौन घर, तुम नहीं जानते ! कहाँ जायगा, यह भी तुम नहीं जानते ! मैं जानता हूँ कि तुम्हारे लाखों रुपये और सैकड़ों कारबार हैं। लेकिन यह मैं कभी नहीं विश्वास करता कि मेरे तीनों घर हज़म करके भी तुम उनके बारे में कुछ नहीं जानते। मैं मूर्ख हूँ, लेकिन ऐसा मूर्ख नहीं।

अब मदन की आँखों में अधिक उत्तेजना झलकने लगी। उसके ओठ अकारण फड़कने लगे और नासिका फूलने लगी।

मदन के इस भाव को देखकर मोहन के मुख पर अप्रसन्नता के लक्षण दिखाई देने लगे। जान पड़ा, वह कुछ

कहना चाहता है। किन्तु उसने अपने को बहुत सँभाला। खिड़की खुली थी, उधर ही बाग़ की ओर चुपचाप देखने लगा।

कुछ देर बाद नौकर ने आकर चाय का पियाला उठाया। पूछा—और लाऊँ?

मोहन ने कहा—"नहीं।" नौकर पियाला उठा ले गया।

मोहन ने दराज़ खोलकर गिलौरीदान निकाला। उसमें से दो पान आप खा लिये। पूछा भी नहीं कि मदन पान खायगा या नहीं।

पान चबाते-चबाते मोहन ने मदन की ओर मुँह फेरकर कहा—तो तुम अपने घर की बाबत पूछ रहे थे?

"हाँ, मैं यह पूछता था कि जो पच्चीस हज़ार रुपये मैंने तुमसे उधार लिये थे उनके लिए क्या मुझे तीनों मकानों से हाथ धोना पड़ेगा?"

"तमस्सुक में यही बात लिखी थी न?"

"तमस्सुक में यही बात लिखी है, यह मैं जानता हूँ। शाइलाक महाशय, तमस्सुक में लिखे रहने के कारण क्या आप 'आध सेर मांस' लेंगे?"

इस नई उपाधि से मोहन और भी नाख़ुश हो गया। उसने विद्रूप के स्वर में कहा—सूद और असल मिलाकर कितने रुपये हुए, जानते हो? हिसाब किया है?

"जी हाँ।"

"कितनी रक़म हुई?"

"पैंतालीस हज़ार के लगभग।"

"तुम मुझे शाइलाक कहते हो। लेकिन मैं शाइलाक नहीं हूँ, इसका प्रमाण तुम्हें देता हूँ। तुम्हारे तीनों मकानों की क़ीमत क्या होगी?"

"इन पाँच वर्षों में कलकत्ते के घरों के दाम दूने हो गये हैं। इस समय मेरे तीनों घरों के दाम कम से कम पचास हज़ार रुपये होंगे।"

"शायद इससे भी अधिक रुपया होगा। तमस्सुक में जो पाँच बरस की म्याद थी वह पूरी हो गई। इस समय आईन की रू से लाख रुपये देने पर भी तुम उन तीनों घरों को नहीं पा सकते।"

"ठीक है।"

"अच्छा, तुम मेरे पैंतालीस हज़ार रुपये दे दो। मैं तुमको तुम्हारे तीनों घर फेरे देता हूँ। क्यों, शाइलाक होता तो राज़ी हो जाता?"

मदन चुपचाप सिर झुकाये बैठा रहा।

छिः मदन, केवल क्रोध करना ही जानते हो! केवल कड़ी बातें कहना ही सीखा है! यह क्यों नहीं कहा कि अच्छा तीनों घर बेचकर अपने पैंतालीस हज़ार रुपये ले लो और बाक़ी पाँच हज़ार रुपये मुझे दे दो। देखते, तुम्हारे मोहन दादा क्या उत्तर देते।

थोड़ी देर चुप रहकर विनीत कातर स्वर से मदन ने कहा—भाई, पैंतालीस हज़ार रुपये की बात क्या कहते हो, आज अगर तुम पैंतालीस रुपये लेकर भी घर देने पर राज़ी हो जाते तो मैं पैंतालीस रुपये भी न दे सकता। घर में केवल तीन दिन खाने की रक़म है। उसके बाद निराहार व्रत का सामना है।

मोहन ने थोड़ी देर चुप रहकर कहा—मुझसे क्या करने के लिए कहते हो?

मदन ने तब हाथ जोड़कर कहा—भाई, लड़कपन में जो हमारी-तुम्हारी दोस्ती थी उसी की दोहाई है, तुम मुझे इस तरह बर्बाद न करो। मेरा सूद कुछ तुम माफ़ करो। तुम ख़ुद ही कहते हो कि इस समय मेरे तीनों मकानों के दाम पचास हज़ार रुपये से ऊपर होंगे। तुम रोज़गारी आदमी हो, मेरी अपेक्षा इन बातों को अच्छी तरह जानते हो। तुम ये दोनों किराये पर चलनेवाले मकान लेकर मुझे छुटकारा दे दो। उन दोनों मकानों के दाम कम से कम पैंतीस-छत्तीस हज़ार रुपये होंगे। मेरे क़र्ज़ के असल पचीस हज़ार रुपयों से यह रक़म कहीं अधिक है। मान लो, इस रक़म का सूद तुमने मुझसे कुछ कम ही पाया। मेरा रहने का मकान तुम छोड़ दो। नहीं तो बाल-बच्चों को लेकर मुझे रास्ते में खड़ा होना होगा। रहने के लिए मकान होगा तो मैं मेहनत-मजूरी करके—चाहे जिस तरह हो—अपने बाल-बच्चों को

खाने के लिए रोटी-दाल दे सकूँगा। यद्यपि मेरे पास इस समय केवल तीन ही रुपये हैं, मगर मैं तुमसे नगद कुछ नहीं माँगता। मेरे पास तीन दिन के लिए खाने को है। मैं इसी बीच में कुछ खाने का प्रबन्ध कर लूँगा। सूद का कुछ रुपया तुम माफ़ कर दो। रहने के घर का कबाला मुझे फेर दो।

मोहन सिर झुकाये सुन रहा था। उसके मुँह का पान चुक गया था। मदन की बात पूरी होने पर एक बार खिड़की के बाहर बाग़ की तरफ़ और फिर एक बार मदन की ओर देखकर उसने दो पान और खाये, और फिर बाग़ की ओर मुँह करके कहने लगा—देखो, तुमने अपने बाल-बच्चों की बात कही सो ठीक है। लेकिन वैसे ही मेरे भी तो बाल-बच्चे हैं। हम लोग परिश्रम करते हैं, रोज़गार करते हैं, सो सब अपने बाल-बच्चों के लिए ही तो करते हैं। हमको यह प्रबन्ध कर जाना चाहिए कि हमारे न रहने पर उनको किसी तरह का कष्ट न मिले। अतएव यह मानना पड़ेगा कि उन लोगों के प्रति हमारा एक विशेष कर्त्तव्य है। मेरा यही कर्त्तव्य है कि मेरे बाप-दादे जो कुछ रुपया और सम्पत्ति मुझे दे गये हैं उसे सुरक्षित रखकर—बढ़ाकर—मैं अपने बालबच्चों को दे जाऊँ। मित्रता के लिए, लड़कपन की दोस्ती का ख़याल करके, अगर मैं उस सम्पत्ति का कोई हिस्सा बर्बाद कर जाऊँ तो क्या वह मेरे लिए अधर्म्म की बात न होगी?
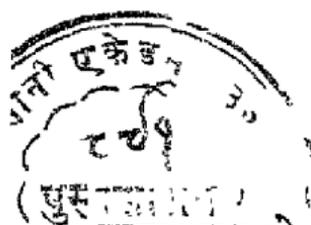
बाल्यबन्धु के ऐसे धर्मबोध और कर्त्तव्यज्ञान को देखकर ऐसे दुःख के समय भी मदन को हँसी आ गई। लेकिन पल भर में वह हँसी ओठों के भीतर ही रह गई। उसके मन में घृणा का भाव भर गया। उसने सोचा कि संसार की कैसी विचित्र गति है! जो एक दिन मेरे पैर में एक काँटा लगने से भी सहानुभूति से छटपटाने लगता था वही आज मेरी यह दुर्दशा देखकर भी अटल-अचल है। जो हृदय फूल की तरह सुकुमार था उसे आज धन के लालच ने पत्थर की तरह कठिन कर डाला है। देवता पिशाच बन गया है।

मदन को चुप देखकर मोहन ने कहा—तुम्हारे रहने के घर का एक किरायेदार भी मिल गया है। महीने में पचास रुपया किराया देना चाहता है। मेरे एटर्नी ने कल मुझे चिट्ठी में यह बात लिखी है।

मदन ने कहा—हाँ—कल तीसरे पहर मुझे भी उनका नोटिस मिला है कि एक हफ़्ते में मकान ख़ाली कर दो।

और दो पान खाकर मोहन ने कहा—मैं तो समझता हूँ कि तुम्हें एक छोटा सा किराये का मकान ढूँढ़ लेना चाहिए। ऊपर एक या दो सोने के कमरे, नीचे एक रसोई-घर, भण्डारा, कल और पायख़ाना होने से ही तुम्हारा काम चल जायगा। ऐसा घर शहर में ढूँढ़ने से उसका किराया ज्यादह देना पड़ेगा। हाँ, इधर भवानीपुर की तरफ़ दस-पन्द्रह रुपये महीने में ऐसा मकान रहने को मिल सकता है।

तुम चाहो तो मेरे कहने से मेरे आदमी तुमको ऐसा मकान खोज देंगे। बड़े घर की तुम्हें ज़रूरत ही क्या है? तुम, तुम्हारी स्त्री और दो लड़की-लड़के ही तो हैं। जैसा घर मैंने बताया वैसे घर में बहुत अच्छी तरह तुम्हारा गुज़र हो जायगा। क्या कहते हो?

मदन ने कुछ उत्तर नहीं दिया। वह सिर झुकाये न-जाने क्या सोचता रहा।

कुछ देर अपेक्षा करके मोहनलाल ने कहा—तो ऐसा मकान खोजने के लिए नौकरों से कह दूँ?

मदन ने ऊँचे स्वर में कहा—रहने दो, नौकरों को कष्ट देने की क्या ज़रूरत, मैं आप खोज ले सकता हूँ। बड़ी तो तुमने दया की, और भी अगर ज़रा सी दया कर सको तो फिर नया घर खोजने की ज़रूरत ही न पड़े। भोजनों के बिना हम दोनों स्त्री-पुरुष बहुत दिन जी नहीं सकते। हमारे मर जाने पर हमारे लड़के-लड़की के जीने की ही क्या सम्भावना है? तुम दया के सागर हो, दया करके थोड़ा सा समय और बढ़ा दो। सात दिन की जगह एक महीना कर दो। जिस घर में पैदा हुआ हूँ उसी में मरूँ भी। एक महीने में सब सफ़ाया हो जायगा।

मदन की ये बातें जैसे प्रेत की तरह अट्टहास करती हुई उसी कमरे में इधर-उधर दौड़ने लगीं। उन बातों के अङ्ग-प्रत्यङ्ग से जैसे रुधिर का—मदन के हृदय के ताजे खून का—

कुहारा छूट रहा था। मोहन फिर बाग़ की तरफ़ देखने लगा।

मदन अब उठकर खड़ा हो गया। उसने पहले की अपेक्षा धीमे स्वर में कहा—तो जाता हूँ। मैंने व्यर्थ ही तुम्हारा इतना समय नष्ट किया।

मोहनलाल ने कोमल भाव से कहा—बैठो।

मदन बैठकर उदास शून्य दृष्टि से मोहन के मुँह की ओर ताकने लगा।

"ज़रा सी चाय मगाऊँ? पियोगे?"

"नहीं, रहने दो।"

गिलौरीदान से दो पान निकालकर मोहन ने कहा—पान खाओ।

मदन ने कहा—तुम खाओ।

पान रखकर, पहले धीरे और फिर उत्तेजना के स्वर में मोहनलाल कहने लगा—पहले जो मैं तुमसे कह चुका हूँ कि मित्रता के वास्ते मैं अपने बाल-बच्चों के साथ अन्याय नहीं कर सकता सो वह मेरा मत बदला नहीं। लेकिन यह बात भी नहीं है कि मैं तुम्हारी हालत को समझ नहीं रहा हूँ। बाप-दादे के घर में कम्बल ओढ़कर पड़े-पड़े अन्न के बिना तड़प-तड़पकर जान देना—ये सब नाटक-नाविल की बातें छोड़ दो। इस समय स्त्री और बाल-बच्चों के भरण-पोषण के

लिए जीविका की खोज में तुमको निकलना पड़ेगा। तुमको याद नहीं है? लड़कपन में हम लोग स्कूल में पढ़ते थे—"उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी:"—उद्योगी पुरुषसिंह लक्ष्मी पाते हैं। भोजन के बिना हम मर जायँगे, हमारे लड़के-बाले सब मर जायँगे, ये सब क्या बातें हैं? तुम तो मर्द हो, ऐसी ही क्या मर्दों की बातें होती हैं? यह तो औरतों का रोना है। मन को मज़बूत बनाओ, कमर कसकर खड़े हो जाओ। इस कलकत्ते में दस लाख आदमी खाते हैं, तुम्हीं को भोजन न मिलेगा? उद्योग करो, तुम्हारी स्त्री और बाल-बच्चे कभी भूखे नहीं रह सकते।

इतना कहकर मोहन आध मिनट तक चुप रहा। फिर कुछ धीमा स्वर करके कहा—इस दशा में नया घर खोजकर उसमें बसना—महीने-महीने उसका किराया चुकाना—तुम्हारे लिए बहुत ही असुविधाजनक होगा। इसी से मैं तुमसे एक प्रस्ताव करता हूँ। तुम्हारा रहने का घर एक वर्ष के लिए मैं तुमको और देता हूँ। उद्योग करो तो मुझे विश्वास है कि तुम इसी साल अपनी दशा बहुत कुछ सुधार सकते हो। कम से कम तुम अपने को ऐसा बना सकते हो कि इसी कलकत्ते में किराया देकर मजे में और गृहस्थों की तरह रहो। आज से एक साल तक तुम अपने घर में रह सकते हो।

बात पूरी होते ही मदन उठ खड़ा हुआ। व्यङ्ग के स्वर में उसने कहा—बाल्यबन्धु, धन्यवाद—इस असाधारण दया

के लिए धन्यवाद। पादरी साहब, इस अयाचित उपदेश के लिए धन्यवाद।

मदन जल्दी से चल दिया।

४

कमरे से बाहर निकलकर बरामदे में मदन ने घड़ी देखी। इस समय पौने दस बजे थे। फाटक से बाहर निकलकर हरिश मुकर्जी की स्ट्रीट होकर वह जल्दी-जल्दी उत्तर ओर चलने लगा। जब वह मैदान में पहुँचा तब उसके माथे में पसीना आ गया था। वह बिलकुल थका हुआ था। झर-झर ठण्डी हवा चल रही थी। एक बड़े भारी बरगद के पेड़ के तले मदन विश्राम के लिए खड़ा हो गया।

थोड़ी दूर पर चौरंगी के असंख्य मकानात देख पड़ते थे। घण्टा बजाकर हू-हू करती हुई, आफ़िस जानेवालों से खचाखच भरी हुई, ट्रामगाड़ियाँ दौड़ रही थीं। काम-काज के कोलाहल का अन्त न था।

मदन खड़े होकर उदास दृष्टि से यही सब देखने लगा। वह सोचने लगा कि इतने आदमी काम-काज करने जा रहे हैं— मेरे ही कोई काम-काज नहीं है। यद्यपि मोहन की बातों को अयाचित उपदेश कहकर उसने व्यंग्य किया था, तथापि वह उपदेश बारंबार उसके मन के द्वार को आकर खटखटाने लगा। मदन मन ही मन कहने लगा—ठीक बात है, "उद्योगिनं पुरुष-

०

सिंहमुपैति लक्ष्मीः।" मैं अन्न के बिना क्यों मरूँगा? अन्न के बिना मेरी स्त्री और बाल-बच्चे क्यों मरेंगे? ठीक है, मैं नौकरी खोजूँगा। चाहे जो नौकरी हो, मैं करूँगा। मुझे अब मान या अपमान का कुछ ख़याल नहीं है। एक दफ़ा खाने को मिलेगा तब भी ज़िन्दगी बच जायगी। क्या एक दफ़ा खाने को भी न मिलेगा? अवश्य मिलेगा। मैं अपनी जान बचाऊँगा, अपनी स्त्री और बालबच्चों को भी बचाऊँगा। देखूँ, भगवान् क्या करते हैं।

यह कहते-कहते मदन को जैसे जोश चढ़ आया।

चौरंगी की एक तीन खण्ड की इमारत के ऊपर बड़े-बड़े लाल-लाल अक्षरों में एक अँगरेज़ की दूकान का नाम लिखा हुआ देख पड़ा। मदन उधर ही चला।

दूकान के द्वार पर पहुँचकर, दरबान की बहुत बहुत ख़ुशा-मद करके, मदन तीसरी मंज़िल पर बड़े साहब के आफ़िस के कमरे में पहुँचा। साहब रजिस्टर आगे रक्खे हिसाब जाँच रहे थे। उनकी अवस्था पचास वर्ष की होगी। सिर पर बहुत कम बाल थे। दाढ़ी-मूँछ के बाल सफ़ाचट थे। मदन ने घुसते ही कहा—गुड मार्निंग सर।

साहब ने रजिस्टर से आँख उठाकर अँगरेज़ी में कहा—गुड मार्निंग। क्या चाहिए बाबू?

मदन ने कहा—नौकरी चाहिए। आप अनुग्रह करके अगर मुझे कोई नौकरी देंगे तो मेरी जान बचा लेंगे। नहीं

तो मुझे चोरी या आत्महत्या करने के लिए लाचार होना पड़ेगा।

साहब ने मदन के रङ्ग-ढङ्ग देखकर और उसकी ये अद्भुत बातें सुनकर उसे पागल समझा। साहब को कुछ शङ्का भी हुई। दीवार में गड़े हुए लोहे के सन्दूक़ की ओर आप ही उनकी दृष्टि आकृष्ट हुई। सन्दूक़ बन्द था। अपनी जेब में हाथ डालकर देखा, चाभी मौजूद थी। क्या जाने, यह पागल एकाएक चोट न कर बैठे, यह सोचकर साहब ने घण्टी बजाकर नौकर को बुलाया। नौकर आकर खड़ा हुआ।

तब साहब ने मीठे स्वर में कहा—"बाबू, मुझे बड़ा खेद है कि इस समय मेरे यहाँ कोई नौकरी की जगह ख़ाली नहीं है। बल्कि तुम अपने सार्टिफिकिटों की नक़ल के साथ मेरे नाम एक दरख़्वास्त भेजना। जगह ख़ाली होने पर मैं तुम्हारा ख़याल रक्खूँगा। गुड मार्निंग।" नौकर से कहा—बाबू को रास्ता दिखा दो।

मदन एक लम्बी साँस लेकर चला आया। इसके बाद और कई अँगरेज़ी दूकानों के साहबों से मुलाक़ात की। मगर कहीं नौकरी न मिली। कहीं दरबान ने ही नहीं कृपा की, और कहीं दरबान की कृपा हुई तो साहब को फ़ुरसत न थी।

मदन तब धीरे-धीरे धर्मतल्ले की ओर बढ़ा। कुछ देर बाद वह एक प्रसिद्ध अँगरेज़ी के दैनिक अख़बार के आफ़िस के फाटक के सामने पहुँचा। देखा, फाटक के बाहर एक जगह

पर कुछ यूरेशियन और फिरंगी साहब खड़े हुए कुछ पढ़ रहे हैं। पास जाकर उसने जाना कि तख़्ते के ऊपर उस दिन का अख़बार कई अंशों में अलग-अलग चिपकाया हुआ है। पढ़नेवालों में अधिकांश लोग "जगह ख़ाली" का नोटिस पढ़ रहे थे।

यही तो मदन चाहता था। वह भी मन लगाकर उन विज्ञापनों को पढ़ने लगा। कुछ देर इस तरह बीतने के बाद उसने समझा कि कम से कम दो विज्ञापन ऐसे हैं जिनसे उसका कुछ मतलब निकल सकता है। अन्यान्य लोगों में से कोई पाकेटबुक में, कोई रद्दी काग़ज़ पर, अपने-अपने मतलब के विज्ञापन नोट कर रहा था। किन्तु मदन के पास न काग़ज़ था न पेन्सिल थी और न काग़ज़-पेन्सिल ख़रीदने के लिए पैसा ही था। पहले उसने सोचा कि दोनों विज्ञापनों को कण्ठ कर लूँ। कण्ठ करना शुरू भी किया। लेकिन तबियत ठीक न थी। कण्ठ करना कठिन हो गया। तब हताश होकर वह इधर-उधर देखने लगा। उसने देखा, एक थियेटर का नोटिस सड़क पर पड़ा हुआ था। मदन ने उसे उठा लिया। काग़ज़ तो मिल गया, पेन्सिल कहाँ से आवे? एक यूरेशियन साहब, मैली टोपी और फटा कोट पहने, वहाँ विज्ञापन नोट कर रहा था। उसका लिखना समाप्त होने पर मदन ने पास जाकर हिन्दी में कहा—साहब, क्या आप पेन्सिल ज़रा मुझे दे सकते हैं?

इन ने साहब के गाल पर एक थप्पड़ जमा दिया ।—पृ० २६

साहब ने आँखें लाल करके कहा—गेट आउट यू डैम निगार।

तुरन्त ही मदन ने साहब के गाल पर एक थप्पड़ जमा दिया।

हिन्दुस्तानी के हाथ से स्वदेशी थप्पड़ खाकर पहले तो साहब सन्नाटे में आ गया। थोड़ी देर बाद आस्तीन चढ़ाकर वह मदन पर वार करने चला। दोनों में हाथापाई होने लगी। देखते-देखते सैकड़ों राहगीर चारों ओर जमा हो गये। न-जाने कहाँ से एक पहरेवाले ने आकर "क्या हुआ, क्या हुआ" कहते-कहते भीड़ ठेलकर भीतर प्रवेश किया और बड़ी मुश्किल से दोनों आदमियों को छुड़ाकर अलग किया। इसी बीच में एक गोरा सार्जन्ट भी वहाँ आ गया। यूरेशियन की नाक से खून बह रहा था; मदन का कोट और शाल फट गया था। सार्जन्ट को देखते ही यूरेशियन साहब ने कहा—इस नेटिव ने मुझे मारा है।

मदन ने उत्तेजित स्वर में कहा—मैंने ही केवल मारा है? मेरा अपराध केवल यह है कि मैंने इससे पेन्सिल माँगी थी। साले ने कहा—हट जाओ यू डैम निगार! मैं निगार (काला आदमी) हूँ और यह कौन है? रङ्ग तो इसका मुझसे भी काला है।

सार्जन्ट तब सिपाही की सहायता से दोनों आदमियों को थाने पर ले चला। वहाँ इन्सपेक्टर ने उक्त यूरेशियन,

सिपाही और सार्जेन्ट के बयान लेकर मदन के ऊपर सड़क पर शान्तिभङ्ग करने का मुक़द्दमा क़ायम किया। मदन का नाम-पता वग़ैरह लिखकर इन्सपेक्टर ने कहा—आज शनिवार है। परसों सोमवार को लालबाज़ार-पुलीसकोर्ट में तुम्हारा मुक़द्दमा होगा। तुम्हारी अगर कोई ज़मानत करे तो दो सौ रुपये की ज़मानत पर मैं तुम्हें छोड़ सकता हूँ।

"मेरी ज़मानत करनेवाला कोई नहीं।"

वह हवालात में बन्द कर दिया गया।

शनिवार का दिन और रात, और रविवार का दिन और रात मदन ने जिस तरह बिताई उसे या तो वह जानता है या सबके अन्तर्य्यामी भगवान् ही जानते हैं। एकाएक उसके ग़ायब हो जाने से चम्पा की क्या दशा हुई होगी! वह ज़रूर सोचती होगी कि दुःख के मारे मदन या तो फ़क़ीर हो गया है या उसने आत्महत्या कर ली है। हाय! उस अभागिन ने शायद अन्न-जल छोड़ दिया होगा। कौन उसे यह ख़बर देगा? कौन उसे समझावेगा? घर में तीन रुपये थे, खाने की तो अभी उन्हें तंगी न होगी। किन्तु अदालत के विचार से अगर मदन को जेल जाना पड़ेगा तो स्त्री और बाल बच्चे क्या खायँगे? कहाँ जायँगे? शायद तब उसकी स्त्री को, गोद में लड़का लेकर और लड़की का हाथ पकड़कर, रास्ते में भीख माँगने के लिए निकलना पड़ेगा। हवालात के भीतर बैठे-बैठे मदन इसी तरह सोचता और रोता था। उसके

आँसुओं से हवालात के भीतर का पत्थर का फ़र्श भीग जाता था। पहरेदार उसे समय पर खाने को दे जाता है, पर खाना तो दूर रहा—। मदन उसे छूता तक नहीं रात को भी उसे नींद नहीं आती। अकेला बैठा जागा करता है।

सोमवार के दिन दस बजे विचार के लिए वह अदालत में हाज़िर किया गया। दो घण्टे के बाद उसकी पुकार हुई। मजिस्ट्रेट के पूछने पर जो कुछ हुआ था वह सब मदन ने कह दिया।

यूरेशियन साहब ने कहा कि मैं एक विज्ञापन पढ़ रहा था। इसी समय असामी ने आकर विज्ञापन की आड़ कर ली और खड़ा हो गया। मैंने विनीत भाव से इससे हट जाने को कहा। इस पर क्रोध करके असामी मार-पीट करने लगा। असामी की मार से मेरी नाक से ख़ून बहने लगा। सिपाही और सार्जेन्ट साहब इसके गवाह हैं।

साहब का बयान हो चुकने पर मजिस्ट्रेट ने मदन से कहा—तुम्हारे वकील है ?

"कोई नहीं।"

"जिरह करोगे ?"

"क्या जिरह करूँ ?"

मजिस्ट्रेट ने तब ख़ुद मदन के कथनानुसार पेन्सिल माँगने आदि के बारे में प्रश्न किये। यूरेशियन साहब ने कहा—यह सब झूठ है।

इसके बाद सिपाही और सार्जेन्ट ने जो कुछ देखा था वह बयान किया।

मजिस्ट्रेट ने तब मदन से पूछा—तुम कोई सफ़ाई का गवाह पेश करना चाहते हो?

मदन ने कहा—जो कुछ हुआ है, वह रास्ता चलनेवाले सभी आदमियों ने देखा है। सभी कह सकते हैं कि मेरा कहना सच है।

मजिस्ट्रेट—उनमें से किसी का नाम और पता बतला सकते हो?

मदन—कैसे बतलाऊँ?

इसके बाद मजिस्ट्रेट ने पाँच मिनट तक राय लिखी। अन्त को कहा—तुम पर पचीस रुपया जुर्माना, न देने से एक हफ्ते की क़ैद।

कोर्ट-इन्सपेक्टर ने मदन की तरफ़ देखकर पूछा—जुर्माने के रुपये दोगे?

मदन ने कहा—कहाँ पाऊँ?

अदालत का सिपाही तब मदन को जेल ले जाने के लिए कटहरे के भीतर गया। इसी समय एक अपरिचित आदमी कह उठा—हुजूर, असामी मेरा मित्र है। मैं जुर्माने का रुपया दाखिल करता हूँ।

मदन ने अकचकाकर उस आदमी की तरफ़ देखा कि एक तीस बरस का नौजवान गोरे रङ्ग का आदमी है।

सिर पर अलबर्ट फ़ैशन के बाल और आँखों में सोने की कमानी का क़ीमती चशमा है। वह एक क़ीमती दुशाला ओढ़े हुए है। उसे मदन ने कभी नहीं देखा।

उस युवक ने रुपये दाख़िल करके मदन को छुड़ा लिया। इसके बाद पास जाकर चुपके से कहा—मेरे साथ आइए। इस समय यहाँ पर कोई बात न पूछना।

विस्मित मदन चुपचाप उस युवक के पीछे हो लिया। सीढ़ियाँ उतरकर सड़क के पास आकर मदन ने देखा, एक ब्रुहम-गाड़ी खड़ी हुई है। उस आदमी ने कहा—चढ़िए।

उस समय मदन का सिर चकरा रहा था। उसका सबसे पहला कर्त्तव्य यह था कि वह घर जाकर बाल-बच्चों की ख़बर लेता। किन्तु,उसे वह भूल गया। वह काठ के पुतले की तरह गाड़ी पर सवार हो लिया। उसके पीछे वह नौजवान भी सवार हो लिया। गाड़ी तेज़ी के साथ सियाल-दह की ओर चली।

५

गाड़ी में जब तक बैठना पड़ा तब तक वह नौजवान आदमी चुप बैठा रहा। मदन की भी हालत उस समय बातचीत करने लायक़ न थी। वह बैठे-बैठे केवल स्त्री और बाल-बच्चों की ही चिन्ता करता रहा। सिर्फ़ कभी-कभी बाहर की ओर देख लेता था कि गाड़ी कहाँ जा रही है।

गाड़ी सियालदह का पुल पार होकर बेलियाघाटा में घुसी और छोटे से बाग़ से सुशोभित एक दोमंज़िले मकान के सामने आकर खड़ी हो गई। उस नौजवान ने उतरकर कहा—आइए।

मदन उतरकर उस आदमी के पीछे-पीछे चला। एक ख़ूब सजे हुए कमरे में जा कर दोनों बैठे। नौजवान ने कहा—जान पड़ता है, आपने न नहाया है, न खाया है।

मदन ने कहा—नहीं, मैंने अभी स्नान नहीं किया। नव बजे भोजन लाया तो गया था, लेकिन मैंने खाया नहीं। हाजत में मुझसे नहाया-खाया नहीं गया।

"सो जानता हूँ" कहकर उस नौजवान ने ऊँचे स्वर से कहार को बुलाया। "हुज़ूर" कहकर कहार आ गया।

नौजवान ने कहा—बाबू को नहलाओ, और एक धोती निकाल दो।

मदन ने कहा—नहीं, रहने दीजिए। मैं घर जाकर ही स्नान और भोजन करूँगा। आज तीन दिन से मैं घर नहीं जा सका। मेरे लापता हो जाने से घरवालों की न-जाने क्या दशा होगी।

"आपके घर में कौन-कौन है?"

"मेरे स्त्री है, एक लड़का है और एक लड़की है। एक दासी भी है।"

"आपका घर कहाँ है?"

"बड़बाज़ार में—बनर्जी की लेन में।"

"तो अभी जाइएगा ?"

मदन ने कुछ संकोच के साथ कहा—मेरी तबियत भीतर से बहुत ख़राब हो रही है। आपने आज मुझे जेल जाने से बचाया है, यह उपकार मैं ज़िन्दगी भर कभी न भूलूँगा। अगर आज्ञा हो तो मैं तीसरे पहर आकर फिर आपसे मुलाक़ात करूँ ?

नौजवान ने कुछ दुखित स्वर में कहा—यों ही चले जाइएगा ? कुछ जल-पान तो कर लीजिए।

"अगर अनुचित न हो तो मैं एक बात पूछूँ ?"

"क्या, कहिए ?"

"आपका नाम क्या है ? और आपने मेरे लिए इतना कष्ट क्यों उठाया ?"

"एक बात कैसी ? ये तो दो बातें हो गईं !"

नौकर चाँदी की तश्तरी में गिलौरियाँ और इलायची ले आया। नौजवान के बहुत कहने से मदन ने दो इलायचियाँ खा लीं। नौजवान ने भी केवल इलायचियाँ खाईं। इसके बाद नौजवान ने कहा—मेरा नाम है ठाकुर जगमोहनसिंह। घर उन्नाव ज़िले में है।

"उन्नाव ज़िले में ? कहाँ पर ?"

"बिगहपुर में।"

मदन ने उत्सुकता के साथ कहा—आप ही क्या बिगहपुर के प्रसिद्ध ज़मींदार जगमोहनसिंह हैं ?

जगमोहन ने हँसकर कहा—प्रसिद्ध-प्रसिद्ध कुछ नहीं हूँ। एक साधारण आदमी हूँ।

जगमोहन के नौकर एक ब्राह्मण देवता गिलास में पानी और रकाबी में कुछ मिठाई मदन के लिए ले आये। प्यास के मारे मदन का गला सूख रहा था। मुँह धोकर कुल्ला करके उसने एक पेड़ा खाकर जल पिया। इसके बाद कहा—आपने मेरी दूसरी बात का तो कुछ जवाब ही नहीं दिया।

जगमोहन ने कहा—आपकी मार-पीट शनिवार को हुई थी न? कल रविवार के अख़बार में मैंने यह हाल पढ़ा। पढ़कर मुझे बड़ी ख़ुशी हुई। हम हिन्दुस्तानी लोग आत्म-सम्मान को ऐसा भूल गये हैं कि राह चलते नित्य अपमान सहते हैं, लेकिन उसका कुछ प्रतिकार नहीं कर सकते। अख़बार में लिखा था कि आपने उस यूरेशियन से पेंसिल माँगी थी। उसके बदले में उसने आपको डैम निगार कहा। आपने उसकी नाक में—

मदन ने बात काटकर कहा—नाक में नहीं गाल में।

जगमोहन ने कहा—गाल में? लिखा था, उसकी नाक में आपने घूसा मारा।

मदन ने कहा—घूसा नहीं, थप्पड़ मारा था। इसके बाद जब उसने मुझ पर आक्रमण किया तब मैंने घूसा चलाया था।

जगमोहन ज़ोर से हँसने लगा। इसके बाद कहा—आप कौन जाति हैं?

मदन ने कहा—चौहान ठाकुर हूँ। ठाकुर होकर मैं कैसे ऐसा अपमान सह सकता था?

जगमोहन ने कहा—आपने बहुत अच्छा किया। देखिएगा, वह फ़िरङ्गी अब जन्म भर किसी हिन्दुस्तानी को डैम निगार नहीं कहेगा। हाँ, उसी काग़ज़ में लिखा था कि सोमवार को पुलिस-अदालत में आपका मुक़द्दमा होगा। मैंने सोचा, जाऊँ देखूँ उस आदमी का चेहरा कैसा है? मैंने सोचा था कि आप भारी लम्बे-चौड़े जवान होंगे। मैं समझता था कि मोटे-मोटे हाड़वाले एक पहलवान को देखूँगा। लेकिन जब आप आकर कटहरे में खड़े हुए तब तो मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। सच है, ताक़त से कोई वीर नहीं होता, वीरता के लिए साहस की ज़रूरत होती है। देखिए न, रूसी लोग जापानियों के मुक़ाबले असुरों के समान थे, फिर भी वे हार गये।

अपनी प्रशंसा से लज्जित होकर सिर नीचा किये मदन धीरे-धीरे मुसका रहा था। उस समय वह जलपान करके पान चबा रहा था। घड़ी में ठन् करके एक बजा। मदन ने खड़े होकर कहा—अगर आज्ञा दीजिए तो मैं इस समय जाऊँ। शाम के बाद फिर आऊँगा।

जगमोहन ने कहा—उस समय तो मैं मकान में न रहूँगा। बल्कि आप कल सवेरे आठ बजे आइएगा। अच्छा, मैं आपसे एक बात पूछूँ, बुरा तो न मानिएगा?

"क्या?"

"आप 'जगह ख़ाली' का नोटिस पढ़ रहे थे। जो नौकरी मिले तो क्या आप काम करेंगे?"

"करूँगा क्यों नहीं!"

"कितनी तनख़्वाह में आपका गुज़ारा होगा?"

"मेरी हालत बहुत ख़राब है। दोनों वक़्त भर पेट दाल-रोटी मिलने का सुभीता होना चाहिए।"

"और कभी नौकरी की है?"

"जी नहीं।"

"कहाँ तक पढ़ा है?"

"एन्ट्रेन्स फ़ेल हूँ। हेयर-स्कूल में पढ़ता था।"

जगमोहन ने कुछ सोचकर कहा—ऐसी दशा में, तीस-चालीस रुपये महीने से अधिक तनख़्वाह की नौकरी मिलनी कठिन है। अच्छा देखूँ, क्या कर सकता हूँ। आप कल आठ बजे आइए।

ज़रूर आने का वादा करके मदन अपने घर की ओर चला।

६

घर में मदन के पैर रखते ही दासी कह उठी—भैया, तुम्हारी कैसी अक्लि है? आज तीन दिन से घर नहीं आये! बहू को रोते-रोते बुख़ार आ गया है। मैं चिन्ता के मारे इधर-उधर छटपटाती फिरती हूँ। दिन कटता है तो रात नहीं

कटती और रात कटती है तो दिन नहीं कटता। कचहरी से निकलकर तुम फिर कहाँ चले गये थे?

"बुख़ार हो आया है?" कहते-कहते फुर्ती के साथ मदन ऊपर की सीढ़ियाँ चढ़ने लगा। दासी भी उसके पीछे-पीछे चली।

सोने के कमरे में जाकर मदन ने देखा, उसकी स्त्री बच्चे को गोद में लिये खड़ी है। लड़की बैठी हुई लैया चबा रही है।

मदन ने पूछा—तुमको बुख़ार हो आया था?

चम्पा ने चुपचाप बच्चे को स्वामी की गोद में दे दिया और सिर नीचा करके आँचल से आँखों के आँसू पोंछने लगी।

लड़की लैया चबाना छोड़कर, माता का आँचल पकड़कर, आँसू भरी आँखों से पिता की ओर ताकने लगी।

मदन ने स्त्री की आँखों पर से आँचल हटाकर कहा—रोओ नहीं, रोओ नहीं। बुख़ार क्या अभी तक बना हुआ है?

चम्पा ने सिर हिलाकर धीरे से कहा—बुख़ार नहीं है।

मदन जाकर बिछौने पर बैठ गया। दासी का फिर मुँह खुला। वह कहने लगी—बुख़ार न होगा? आकर तुम्हें देखने को मिल गई, इसी को ग़नीमत समझो। परसों सबेरे तुम गये थे। दिन भर नहीं आये। हम लोगों को कुछ भी ख़बर नहीं मिली। दिन भर बहू ने न नहाया और न

कुछ खाया। साढ़े चार आने ट्राम के किराये के देकर मैंने अपने जेठ के लड़के को तुम्हारा पता लगाने के लिए भवानीपुर भेजा। उसने आकर कहा—'तुम दस बजे के समय मोहन बाबू के यहाँ से चले आये हो।' यह सुनकर बहू रोने लगीं। शाम को बुख़ार चढ़ आया। बड़े ज़ोर का बुख़ार था। इस ज़ोर से जूड़ी की कँपकँपी चढ़ी कि दो-दो लिहाफ़ ओढ़ाकर ऊपर से मैं दबाकर बैठी तब भी वह शान्त नहीं हुई। देह मानो आग हो रही थी। जूड़ी और बुख़ार के मारे बहू बेहोश हो गईं। इसके बाद मैंने चूल्हा जलाकर दो आलू पकाकर दो रोटियाँ सेकीं और बच्चे को और लड़की को खिला-पिलाकर सावधान किया। आहा, दिन भर बच्चों ने कुछ भी नहीं खाया।—

लड़की ने बीच ही में बात काटकर कहा—क्यों, तुमने लैया ला दी थी सो मैंने दिन को नहीं खाई थी!

मदन ने स्त्री से कहा—तुम खड़ी क्यों हो? तुम कमज़ोर हो, बिछौने पर आकर बैठो।

चम्पा बच्चे को गोद में लेकर ज़मीन पर ही बैठ गई।

मदन ने कहा—सुखिया (दासी), मेरे पुलीस-अदालत में जाने की ख़बर तूने कैसे पाई?

सुखिया इस बात का उत्तर न देकर कहने लगी—उसके बाद, कहती हूँ, सुनो न। सबेरे बहू का बुख़ार उतर गया। आठ बजे के समय मैं सामने के बङ्गाली बाबू के घर गई

उनके मँझले लड़के से जाकर मैंने कहा—"बाबू, हम लोगों के ऊपर तो ऐसी आफ़त है। बहू रो-रोकर मर रही हैं, उनके बुखार चढ़ आया है। तुम कुछ इसका पता लगा सकते हो कि हमारे बाबू कहाँ गये ?" वह लड़का तो बड़ा ही घमण्डी है। पहले तो उसने जैसे सुना ही नहीं; पीछे से बार-बार कहने पर उसने कहा—"मैं उनका कहाँ पता लगाऊँ ? कहीं शराब पिये पड़े होंगे।" बहुत कहने-सुनने पर अन्त को उसने कहा—"यह कलकत्ता शहर है, लाखों आदमी रहते हैं। अच्छा, मैं लोगों से जाकर दर्याफ़्त करता हूँ।" मैंने तीन-चार बार जाकर उससे पूछा कि भैया, हमारे बाबू का कुछ पता लगा ? उसने कहा—"नहीं सुखिया, कुछ भी पता नहीं चला।" वही आकर मैंने बहू से कहा। बहू ने फिर रोना शुरू कर दिया। कहने लगीं—मैं ज़हर खा लूँगी, मैं गले में रस्सी बाँधकर फाँसी लगा लूँगी।

बीच ही में चम्पा बोल उठी—बस बस, मुझे जला न सुखिया। जा, जल्दी चूल्हा सुलगा दे। रसोई चढ़ाऊँ।

सुखिया ने कहा—जाती हूँ, बहू जाती हूँ। उसके बाद भैया, आज सबेरे आठ बजे लैया और पूरी लाकर लड़की और लड़के को खिलाया-पिलाया। फिर बहू से कहा—"दो आने पैसे दो, मैं बाज़ार से तरकारी वग़ैरह ले आऊँ। तरकारी-रोटी बनाकर तुम भी कुछ जलपान कर लो। दो दिन से तुमने कुछ खाया नहीं।" इस पर बहू रोने लगीं

और बोली—"अब जो बदा होगा तो उनके आने पर खाऊँगी।" तब फिर मैं बाहर तुम्हारा पता लगाने को निकली। रास्ते में डाक्टर बाबू का लड़का विजय मिला। उसने कहा—"जानती है सुखिया, तेरे बाबू ने एक साहब को बहुत मारा है!" यह कहकर बदज़ात छोकरा ज़ोर से हँसने लगा। मैंने कहा—"तू जानता है विजय, बाबू कहाँ हैं?" उसने कहा—"तेरे बाबू को पुलीस का सिपाही पकड़ ले गया है। जानती है, तेरे बाबू ने साहब की नाक में ऐसा घूसा मारा कि उसकी नाक से ख़ून बहने लगा।" फिर वह पाजी लौंडा ज़ोर से खिलखिलाकर हँसने लगा। मैंने कहा—"ओ विजय, हमारे बाबू को पकड़कर उन्होंने कहाँ रक्खा है?" उसने कहा—"मैं क्या जानूँ। आज लालबाज़ार की पुलीस-अदालत में तेरे बाबू का मुक़द्दमा होगा। हम सब लड़के देखने जायँगे। आज स्कूल की नाग़ा करेंगे। वह हँसता हुआ चला गया। क्यों बहू, मैंने आकर कहा था न?

"हाँ कहा था। अच्छा ये बातें पीछे होती रहेंगी। तू जाकर चूल्हा सुलगा दे और बाज़ार से दो पैसे की चीनी ले आ। शरबत बना दूँ।"

सुखिया चली गई। मदन ने कहा—मैं अभी जल-पान किये चला आ रहा हूँ। शरबत बनाने की ज़रूरत नहीं।

तब मदन ने संक्षेप में शनिवार से आज तक का अपना हाल सुनाकर कहा—जान पड़ता है, भोजन के बिना मरना

न होगा। उस नौजवान ज़मींदार ने एक नौकरी करा देने का वादा किया है। देखें क्या होता है।

"ज़रूर नौकरी लग जायगी। भगवान् कभी हम लोगों को भूल नहीं सकते। तुम आओ, नहा लो।"

नहाने के समय सुखिया से बाक़ी हाल भी मदन ने सुना। मुक़द्दमे का हाल सुनकर वह फिर बोस बाबू के घर गई थी। बोस बाबू ने सब हाल सुनकर कहा—"मामूली मार-पीट का मुक़द्दमा है। अधिक कुछ न होगा। ज़्यादा से ज़्यादा बीस-पचीस रुपये जुर्माना हो जायगा।" यह सुनकर सुखिया ने अपने सोने के कड़े रेहन रखकर पचास रुपये लिये और लोगों से पूछती हुई कचहरी की तरफ़ चली। कचहरी के पास पहुँचकर उसने देखा कि मदन एक अपरिचित आदमी के साथ अदालत की सीढ़ियाँ उतरकर गाड़ी पर चढ़कर न-जाने कहाँ चला गया। सुखिया ने भैया-भैया कहकर दो-एक बार पुकारा भी था। परन्तु मदन ने नहीं सुना।

७

दूसरे दिन सवेरे आठ बजे बेलियाघाटा जाकर मदन ने जगमोहनसिंह से मुलाक़ात की।

जगमोहन ने मदन को देखकर मुसकाते हुए कहा—आइए आइए, बैठिए। घर जाकर क्या देखा? सब ख़ैरियत है न? बाल-बच्चे बहुत घबरा रहे होंगे?

"बहुत घबरा रहे थे। कल आठ बजे उन लोगों को मेरी ख़बर मिल गई थी। मालूम हो गया था कि मैं जान से सही-सलामत हूँ।"

फिर जो-जो हुआ था सो सब मदन ने कह सुनाया। मदन के परिवार की करुण कहानी सुनते-सुनते जगमोहन की आँखों में आँसू भर आये।

मदन की बात पूरी होने पर जगमोहन कुछ देर तक चुप बैठा रहा। उसके बाद एक लम्बी साँस लेकर उसने कहा—तमाखू पीजिएगा? ओ रे कलुआ तमाखू भर ला—

"उस मामले का क्या हुआ?"

जगमोहन ने कहा—आप नौकरी की बाबत पूछ रहे हैं? कल शाम के बाद इसी के लिए निकला था। श्याम बाज़ार में मेरे एक मित्र काशी बाबू हैं। वे ब्राउन जोन्स कम्पनी के हेडक्लर्क हैं। आफ़िस में उनकी बड़ी ख़ातिर है। साहब उनकी मुट्ठी में हैं। आफ़िस बहुत अच्छा है। तरक़्क़ी भी जल्दी-जल्दी होती है। काशी बाबू ने कहा कि इस समय उनके आफ़िस में कोई जगह तो ख़ाली नहीं है। लेकिन काम बहुत बढ़ गया है। साहब से यही कहकर वे आपको पेड एप्रेन्टिस की हैसियत से अपने दफ़्तर में रख लेने को राज़ी हैं। किन्तु तनख़्वाह अभी पचीस रुपये महीने के हिसाब से ही मिलेगी।

सुनकर मदन का चेहरा उतर गया। उसने कहा—पचीस रुपये में कैसे गुज़ारा होगा?

जगमोहन ने कहा—वही तो कहता हूँ। आजकल नौकरी का हाल ऐसा नाजुक हो गया है कि कुछ पूछो नहीं। जगह ख़ाली होते ही अर्ज़ियों के ढेर लग जाते हैं। लेकिन काशी बाबू ने कहा है कि एक साल तक पचीस रुपये महीने पर उम्मेदवारी करो। उसके बाद जब आप काम में होशियार हो जायँगे तब पचास रुपये का महीना मिलेगा। पाँच रुपये साल के हिसाब से तरक्की होकर पाँच साल में पचहत्तर रुपये का महीना मिलने लगेगा। यही उस दफ़्तर का सबसे नीचा ग्रेड है। फ़र्स्ट ग्रेड की तनख़्वाह है तीन सौ रुपये महीना। आफ़िस बहुत अच्छा है। बहुत से गवर्नमेन्ट आफ़िसों से भी अच्छा। पहले साल कुछ कष्ट उठाना पड़ेगा। मेरी तो राय यह है कि आप यह एप्रेन्टिसी मंजूर कर लीजिए। अख़ीर को आपके लिए अच्छाई होगी।

मदन बैठकर सोचने लगा। अन्त को उसने कहा—एक वक़्त भोजन करूँ तो शायद किसी तरह पचीस रुपये में गुज़र हो जाय।

"रोज़ आपकी गृहस्थी का ख़र्च कितना है?"

"एक रुपये के लगभग।"

"महीने में तीस रुपये?"

"हाँ। उसके सिवा धोबी, नाई आदि का ख़र्च है। कपड़े-लत्ते भी चाहिए।"

जगमोहन ने कुछ सोचकर कहा—लड़के पढ़ाइएगा ? कम आमदनीवाले बहुत से लोग प्राइवेट ट्यूशन करके अपना ख़र्च चलाते हैं।

"ट्यूशन मिलें तो मैं राज़ी हूँ।"

जगमोहन ने कहा—ट्यूशन तो आपको इसी घर में मिल सकता है। मेरा भानजा यहीं रहता है। स्कूल में पढ़ता है। सबेरे अँगरेज़ी पढ़ाने और हिसाब सिखाने एक मास्टर साहब आते हैं। शाम को उसे हिन्दी पढ़ाने के लिए एक मास्टर की मुझे तलाश थी। दस रुपये महीना मिलेगा। शाम को साढ़े छः बजे से साढ़े नव बजे तक पढ़ाना पड़ेगा। आप स्वीकार करें तो—

मदन ने कहा—ज़रूर। आपने मेरा ऐसा उपकार किया है कि आपके भानजे को पढ़ाकर रुपया लेना मेरे लिए किसी तरह उचित नहीं है; किन्तु लाचारी है। मैं यह अच्छी तरह समझता हूँ कि भानजे को पढ़ाने का बहाना करके आप मेरी सहायता करना चाहते हैं। मैं क्या कहकर आपके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करूँ ? ईश्वर आपका भला करें।

तमाखू भरकर नौकर ले आया। जगमोहन ने हुक्के की नली मदन के हाथ में देकर कहा—नहीं नहीं, आप ऐसा ख़याल न करें। उपकार-वुपकार कुछ नहीं है। मुझे एक आदमी की ज़रूरत है। जो उस काम को करेगा वही रुपये पावेगा। और न सही, आप ही सही।

दोनों तमाखू पीते-पीते इधर-उधर की बातें करते रहे। मदन को इस बातचीत से मालूम हुआ कि यह घर और यहाँ की सम्पत्ति जगमोहन की विधवा बहन की है। जगमोहन-सिंह ही अपनी बहन और उसके बाल-बच्चों के वली हैं। बीच-बीच में आकर वे यहाँ की देख-रेख कर जाते हैं। एक पुराना विश्वासी कर्मचारी यहाँ का काम चलाता है। जगमोहनसिंह और दो-तीन दिन कलकत्ते में रहकर घर चले जायँगे। फिर शायद वही चैत के बाद आवें।

तीसरे दिन अँगरेज़ी महीने की पहली तारीख़ थी। निश्चय हुआ कि परसों से ही मदन नौकरी पर जायगा और ट्यूशन भी शुरू करेगा। आज तीसरे पहर जगमोहनसिंह आफ़िस के हेडक्लर्क से मदन की जान-पहचान करावेंगे।

उठने के समय जगमोहनसिंह ने कहा—अच्छा, तो फिर तीसरे पहर पाँच बजे आना। हाँ, और एक बात पूछनी थी। आपने अपनी वर्त्तमान दशा का हाल तो सब ख़ुलासा कही दिया है। तो फिर आप तनख़्वाह मिलने के पहले एक महीने तक क्या खायँगे?

मदन ने सिर झुकाकर कहा—और क्या उपाय है? मैं यही सोच रहा हूँ कि सुखिया कड़े रखकर जो पचास रुपये ले आई है, उन्हींसे कुछ-कुछ क़र्ज़ लेकर इस महीने का काम चलाऊँ।

जगमोहन ने तनिक सोचकर कहा—मेरी सलाह मानिएगा?

मदन ने कहा—कहिए। आप जो कहेंगे उसे मैं शिरोधार्य्य समझूँगा।

दासी के उधार लिये रुपये लेने की कोई ज़रूरत नहीं। सूद बढ़ने के सिवा उससे कोई लाभ नहीं। उसके अच्छा होने की आशा बहुत ही कम है। परसों शाम को मेरे भानजे को पढ़ाकर आप एक रुपया ले जाइएगा। इस तरह तीस दिन में तीस रुपये आप लेंगे। उसमें दस तो आपको मिलने ही चाहिएँ। बीस रुपये आपके ऊपर पेशगी रहेंगे। आपको आफ़िस से जो पचीस रुपये मिलेंगे उनसे बीस रुपये देकर आप इस ऋण को चुका दीजिएगा। बचे हुए पाँच रुपयों से आपके पाँच दिन कट जायँगे। छठे दिन से आप फिर एक रुपया रोज़ ले जाइएगा। दूसरे महीने के अन्त में आप पर पन्द्रह रुपये पेशगी हो जायँगे। आप तनख़्वाह से पन्द्रह रुपये देकर फिर उस ऋण को चुका दीजिएगा। समझ गये? छः महीने तक यों करने से आपको पैंतीसों रुपये बच रहेंगे और क़र्ज़ लेने की ज़रूरत न रहेगी।

"अच्छा, यही करूँगा।"

"मैं आपको तीस रुपये पेशगी न देकर रोज़ एक रुपया देने के लिए कहता हूँ, इससे शायद आप यह समझते होंगे कि मैं आप पर विश्वास नहीं करता?"

मदन ने व्यग्र भाव से कहा—मैं ऐसा अधम अकृतज्ञ नहीं हूँ। आप ऐसा न समझिएगा। मैं अच्छी तरह यह सम-

झता हूँ कि आप मेरी भलाई के लिए ही यह प्रबन्ध कर रहे हैं।

जगमोहन ने कहा—आपकी दशा सदा से अच्छी थी। अभी आप पर ऐसी मुसीबत आ पड़ी है। इकट्ठी रकम हाथ में आने से समझ-बूझकर खर्च करना आपके लिए कठिन हो जायगा; अन्त को आप ऋण करने के लिए लाचार होंगे। ऐसा प्रबन्ध होना चाहिए जिसमें यह बात न हो। आप चिन्ता न कीजिए, हताश न होइए। कहावत है "छोड़िए न हिम्मत, बिसारिए न हरिनाम।" साहस न छोड़िए और भगवान् को न भूलिए। आपका भला ही होगा।

८

ब्राउन जोन्स कम्पनी के आफ़िस के हेडक्लर्क (बड़े बाबू) लाला काशीनाथ कायस्थ थे। अवस्था ४८ वर्ष की होगी, पर सर्विसबुक के अनुसार केवल ३५ वर्ष की है। उनका रङ्ग साँवला और शरीर कुछ मोटा है। मत्थे पर के बाल सफ़ेद हो चले हैं। यही दशा दाढ़ी-मूँछ के बालों की भी है। लेकिन अभी काले बालों की संख्या ही अधिक है। दाढ़ी मुड़ी हुई है। काली सर्ज की चपकन के ऊपर तह किया हुआ दुशाला डाले, सिर पर शमला रक्खे, ट्रामगाड़ी के फ़र्स्ट क्लास में बैठकर वे घर से दफ़्तर आते हैं। आफ़िस में आते ही दुशाले को मोड़कर दराज़ के भीतर रख देते हैं।

उसके साथ ही जेब से निकालकर निशानदार लेबुल-लगी हुई छः औन्स की दवा की शीशी भी वहीं रख देते हैं। जब बहुत थकन मालूम पड़ती है तब दो-एक निशान भर दवा पी लेते हैं। दवा ज़रूर तीव्र होगी, क्योंकि उसे पीते ही मुँह बनाने लगते हैं। फिर रूमाल से अच्छी तरह ओंठ पोंछकर जेब से दो-एक इलायची निकालकर उसके दाने चबाने लगते हैं।

आफ़िस में बड़े बाबू का बड़ा भारी दबदबा है। यह बात पहले ही कही जा चुकी है कि बड़े साहब बिल्कुल उनकी मुट्ठी में हैं। ऐसी प्रभुता न होती तो वे एक-दो बातें कहकर मदन को नौकरी दिला सकते? बड़े बाबू जो कुछ कहते हैं उसी पर बड़े साहब बाइबिल के वाक्य की तरह विश्वास कर लेते हैं। इसी कारण आफ़िस के सब क्लर्क उन्हें भगवान् की तरह मानते हैं।

पहली तारीख को दस बजे के समय मदन आकर नये काम में भरती हुआ। पाँच बजे तक आफ़िस का काम करके घर जाकर हाथ-मुँह धोया और फिर छः बजे पढ़ाने के लिए गया। खर्च के लिए एक रुपया पेशगी लेकर दस बजे के पहले ही वह घर लौट आया।

इसी तरह दिन बीतने लगे। इतना परिश्रम करने का अभ्यास न होने के कारण पहले उसे बड़ा कष्ट हुआ। किन्तु धीरे-धीरे कष्ट कम मालूम पड़ने लगा।

अपनी दशा के ऐसे परिवर्त्तन का स्मरण आते ही उसके हृदय को जैसे कोई खुरचने लगता था। लेकिन पिछली चूक पर पछताने के लिए उसे अधिक समय नहीं मिलता था। आफ़िस में दिन भर काम भरा पड़ा रहता था। आफ़िस से आकर शाम को भी काम करना पड़ता था। रात को भोजन करके लेटते ही वह सो जाता था। एक ही नींद में रात बीत जाती थी। इस कारण इस परिश्रम को उसके घायल हृदय के लिए आराम देनेवाली दवा कहना चाहिए।

इस तरह एक, दो करके छः महीने बीत गये। छः महीने में मदन ने एक दिन भी शराब को नहीं छुआ। नौकरी करने के बाद पहले महीने में सड़क पर शराब की दूकान के पास से जाते समय हर दफ़ा उसका जी चाहता था कि घुस चलूँ। किन्तु वैसे ही जेब में हाथ डालकर देखता था तो उसे ख़ाली पाता था। घर में दो-चार आने पैसे ज़रूर रहते थे; किन्तु बेटे-बेटी के सूखे मुख और फटे कपड़ों का स्मरण हो आने से उन पैसों को घर से लाकर ऐसी फ़जूल-ख़र्ची में फेकने को जी न चाहता था। इस तरह धीरे-धीरे मन मारने का अभ्यास बढ़ने लगा। प्रवृत्ति-रूपी शत्रुओं का दल धीरे-धीरे कमज़ोर हो चला। अब ऐसा हो गया है कि वह शराब की दूकान के पास से निकल भी जाता है पर उसे ख़बर नहीं होती कि वह दूकान कब निकल गई।

सातवें महीने के आरम्भ में पैंतीसों रुपये मदन को मिले। पहले रविवार को तरकारी के सिवा सब सामान महीने भर के लिए उसने ख़रीद लिया।

इस बीच में जगमोहनसिंह एक-आध दफ़ा कलकत्ते आये और दो-चार दिन ठहरकर घर चले गये।

कातिक के अन्त में जगमोहनसिंह फिर कलकत्ते आये। मदन से भेंट होने पर कुशल-प्रश्न के बाद उन्होंने पूछा—आप की एप्रेन्टिसी का एक साल पूरा होने में कितने दिन बाक़ी हैं?

"दस महीने हो गये, और दो महीने होंगे।"

"दो महीने के बाद आपको पचास रुपये का महीना मिलेगा न?"

"महीने भर के बाद बड़े बाबू मेरे सम्बन्ध में एक राय लिखेंगे कि काम करने लायक़ हूँ या नहीं। यदि वे मुझे काम करने लायक़ लिखेंगे तो एक महीने बाद मुझे मुस्तकिल जगह मिल जायगी और पचास रुपये का महीना भी मिलेगा।"

"और अगर वे आपके अनुकूल न लिखें?"

"तो साल पूरा होते ही मेरी नौकरी की भी इतिश्री हो जायगी।"

"आपके काम से बड़े बाबू ख़ुश हैं न?"

"अब तक असन्तोष का कोई लक्षण तो देख नहीं पड़ा।"

"फिर क्या, मेरी समझ में वे आपके बारे में अच्छी राय ही लिखेंगे। आदमी अच्छे हैं।"

दूसरे दिन एतवार था। जगमोहन ने मदन की उस दिन दावत की। मदन नहा-धोकर नव बजे ही हाज़िर हो गया। दोनों आदमी बैठकर बहुत सी बातें—आफ़िस की बातें, बड़े बाबू की बातें, मदन की पारिवारिक बातें—करते रहे।

जगमोहन ने कहा—तो फिर उस अपने घर में आप और दो महीने हैं? उसके बाद आपको किराये का मकान खोजना पड़ेगा?

"जी हाँ। मैंने इसी बेलियाघाटा में एक छोटा सा घर देख रक्खा है। अभी वह ख़ाली नहीं है, डेढ़ महीने के बाद ख़ाली होगा। उसी को लेने का निश्चय कर रक्खा है।"

"बेलियाघाटा में कहाँ पर?"

"आपके घर से निकलकर थोड़ी दूर बायें हाथ जाकर उत्तर की ओर जो गली गई है उसी के भीतर। छोटा सा घर है, ऊपर दो कमरे और नीचे दो कोठरियाँ हैं। नीचे पाइप भी है।"

"क्या किराया है?"

"पन्द्रह रुपये महीना।"

"दो महीने के बाद अगर आमदनी बढ़ जायगी तो ख़र्च भी पन्द्रह रुपये का बढ़ जायगा।"

"उसके लिए क्या किया जायगा! कष्ट उठाकर किसी तरह गुज़ारा करना ही पड़ेगा।"

दो दिन बाद जगमोहनसिंह अपने घर लौट गये। कह गये कि तीन महीने के इधर अब कलकत्ते आना न होगा।

८

इसके कुछ दिन बाद ही मदन ने देखा कि अब बड़े बाबू उसके साथ पहले का ऐसा दया-पूर्ण व्यवहार नहीं करते। ज़रा-ज़रा सी बात पर कड़ी-कड़ी बातें सुनाने लगते हैं। मदन का कोई भी काम उनको पसन्द नहीं आता।

मदन के काम में साधारण भूल-चूक होते ही बड़े बाबू उसे बुलाकर डाँटते हैं और कहते हैं—देखो बाबू, ऐसा करोगे तो तुमसे इस आफ़िस का काम नहीं चलेगा।

इस तरह की खटपट दिन-दिन बढ़ने लगी।

सोमवार के दिन मदन के साथी क्लर्क कालीचरण ने मदन को आड़ में ले जाकर कहा—यह मुझे मालूम हो गया कि आप पर बड़े बाबू क्यों नाराज़ हैं।

"क्या, बतलाइए।"

"आप जगमोहनसिंह को पहचानते हैं?"

"अच्छी तरह।"

"वे कब आये थे?"

"अभी हाल में ही। उन्होंने तो बड़े बाबू से कह-सुनकर मुझे नौकर रखा दिया है।"

"अगर आप उनको जानते हैं तो फिर आपने ऐसा काम क्यों किया ?"

मदन ने विस्मित होकर पूछा—कैसा काम ?

"आपने क्या किया, सो आप ही सोचकर देखिए। आपने उनसे बड़े बाबू के बारे में जो कुछ कहा है उसी से आग लग गई है।"

मदन ने और भी विस्मित होकर कहा—मैंने क्या कहा है ?

"आपने कहा है कि बड़े बाबू भारी शराबी हैं। दवा की शीशी का बहाना करके दफ़्र में ब्राण्डी ले आते हैं। घण्टे-घण्टे भर के बाद वही ब्राण्डी पीते हैं। परसों शाम को शनिवार के दिन हम लोग उनके घर गये थे तब उन्होंने ये बातें कही थीं।"

मदन को स्मरण हो आया कि जिस दिन वह जगमोहन के यहाँ दावत खाने गया था उस दिन बड़े बाबू की दवा की शीशी का ज़िक्र ज़रूर हुआ था। किन्तु उसने बड़े बाबू को न तो शराबी कहा और न उनकी कुछ निन्दा ही की। मदन ने यही बात कालीचरण से कही।

कालीचरण ने कहा—यही तो बात है। एक से दूसरा बात बढ़ाकर ही कहता है। अब आपको बीच-बीच में बड़े बाबू के घर जाना और उनकी ख़ुशामद करते रहना चाहिए। देखते नहीं हैं आप कि आजकल ख़ुशामद का ही बाज़ार गर्म है। हम लोग तो अक्सर शनिवार को उनके घर उनका दरबार करने जाते हैं। आप क्यों नहीं जाते ?

मदन ने कुछ हँसकर कहा—आप लोग लम्बी-लम्बी तनख़्वाहें पाते हैं। इससे शनिवार को दरबार करने की फ़ुरसत पा जाते हैं। मैं ग़रीब और कम तनख़्वाह पानेवाला आदमी हूँ। अगर मैं आप लोगों के साथ शनिवार को दरबार करने जाऊँ तो मेरा काम कैसे चले? पेट भर खाने को मिलना ही कठिन है; शनिवार की सोहबत कहाँ से करूँ?

"तो आपसे कुछ खर्च करने को कौन कहता है? खाना-पीना सब तो बड़े बाबू के मत्थे होता है। अगर आपको खाने-पीने में कुछ आपत्ति हो तो आप न कुछ कीजिएगा। बैठिएगा, बातचीत कीजिएगा, चले आइएगा। शराब न पीजिएगा।"

दूसरे शनिवार को मदन कालीचरण के साथ बड़े बाबू के यहाँ ईवनिंग-पार्टी में शामिल हुआ। और सब लोग बोतल-वाहिनी की सेवा करने लगे। मदन चुपचाप अलग बैठा रहा। शराब पीने के लिए किसी-किसी ने मदन से आग्रह भी किया—ख़ुद बड़े बाबू ने भी दो-एक बार कहा। लेकिन मदन राज़ी न हुआ। इस समय शराब पीने की चाह तो उसे रही ही नहीं, बल्कि शराब से उसे एक तरह की घृणा सी हो गई है। फिर भी क्या करे, नौकरी के लिए दो शनिवारों को और भी वह उस पार्टी में जाकर शामिल हुआ। परन्तु शराब किसी रोज़ नहीं पी।

इधर बड़े बाबू मदन पर बहुत प्रसन्न रहे। किन्तु सोमवार से फिर नाराज़ हो गये। इसका कारण मदन को कुछ न मालूम हुआ।

मंगलवार को कालीचरण ने मदन को आड़ में ले जाकर कहा—आप क्या बिल्कुल ही नासमझ हैं? इतने कष्ट से बड़े बाबू को ख़ुश करके फिर सब बिगाड़ दिया।

मदन ने विस्मित होकर कहा—क्यों, मैंने क्या किया?

कालीचरण ने कहा—आपने किसी से कहा है कि शनिवार को बड़े बाबू शराब पीकर थेई-थेई नाचते हैं? और भी बहुत सी बातें कही हैं।

मदन ने और भी विस्मित होकर कहा—मैंने ऐसी बात तो किसी से नहीं कही।

"जगमोहनसिंह से कही है?"

"वाह! वे तो महीने भर से कलकत्ते में हैं ही नहीं।"

"बड़े बाबू ने किसी का नाम नहीं लिया। केवल यही कहा कि मैंने एक विश्वासी पुरुष से सुना है। क्रोध के मारे वे एकदम आग हो रहे हैं। उन्होंने मुझसे कहा कि हमारे आफ़िस में ऐसे आदमी का रहना ठीक नहीं। जो घर की बात बाहर ज़ाहिर कर दे उस आदमी को निकाल देना ही अच्छा है। अच्छा, आप क्या सचमुच आर्यसमाजी हैं?"

"नहीं जी, मैं आर्यसमाजी नहीं हूँ। मैं काली, दुर्गा, महादेव आदि सब देवताओं को मानता हूँ।"

"तो फिर एक काम कीजिए। इस समय आप बड़े बाबू को यह दिखला दें कि आप हम लोगों के दल के ही आदमी हैं।

"यह बात कैसे दिखलाऊँ ?"

"आप हम लोगों की सोहबत में बैठकर दो-एक गिलास शराब के पी लीजिए। बस, सहज ही बड़े बाबू का यह ख़याल जाता रहेगा कि आप आर्यसमाजी हैं।"

मदन ने हाथ जोड़कर कहा—भाई, मुझे माफ़ करो। यह काम मुझसे न होगा। आप बड़े बाबू को समझा दीजिएगा कि मैंने किसी से उनकी निन्दा नहीं की और न आगे कभी ऐसा काम मुझसे होगा।

"मैं तो कहूँगा, लेकिन वे जब केवल मेरे कहने पर विश्वास करें तब न !"

दूसरे शनिवार को मदन बड़े बाबू के घर नहीं गया। सोमवार को कालीचरण ने आकर कहा—परसों रात को आप नहीं आये ?

"वहाँ जाने से तरह-तरह की अफ़वाहें उड़ती हैं, इसी से नहीं गया।"

"आपका न जाना बहुत बुरा हुआ। आप जानते हैं, बड़े बाबू ने क्या कहा है ?"

"क्या ?"

"उन्होंने कहा है कि तो उसने ज़रूर हम लोगों को बदनाम किया है। अब उसकी कारवाई को हम लोग जान गये हैं, इसी से वह नहीं आया। कौन मुँह लेकर यहाँ आवेगा? यह भी उन्होंने कहा है कि आपके सम्बन्ध में सालाना रिपोर्ट लिखते समय उसमें आपको 'काम करने के अयोग्य' लिख देंगे।"

सुनते ही मदन के सिर पर जैसे पहाड़ फट पड़ा। कहाँ तो वह यह आशा कर रहा था कि अब पचास रुपये महीने की तनख़्वाह हो जायगी। पन्द्रह रुपये मकान के किराये के देकर भी उसके पास पहले की अपेक्षा दस रुपये अधिक रहेंगे। गृहस्थी के ख़र्चे की तङ्गी कम हो जायगी। किन्तु बीच ही में यह क्या आफ़त फट पड़ी! सो भी किस समय, जिस दिन बड़े बाबू रिपोर्ट लिखनेवाले थे उसके ठीक दो ही दिन पहले! नौकरी न रहने पर क्या होगा? एक महीने के बाद मकान भी ख़ाली कर देना होगा। वह खायगा क्या? और रहेगा कहाँ?

दो दिन बाद, जहाँ सब क्लर्क जलपान करते और सिगरेट पीते थे वहाँ कालीचरण ने चुपके-चुपके मदन से कहा—आज बड़े बाबू ने आपके बारे में अपनी राय लिखी है। आप आज पाँच बजे के बाद ज़रा ठहरिएगा। उनके घर चले जाने पर फ़ाइल निकालकर देखूँगा कि उन्होंने आपके बारे में क्या राय लिखी है।

मदन काम करने का ढोंग करके पाँच बजे के बाद भी ठहरा रहा। बड़े बाबू ठीक पाँच बजे चले गये। आफ़िस के और-और बाबू भी एक-एक करके चल दिये। कालीचरण ने तब बड़े बाबू की दराज खोलकर रिपोर्ट निकाली। उसमें लिखा था—मदनसिंह काम नहीं कर सकता। साल ख़तम होने पर उसको जवाब दिया जा सकता है।

पढ़कर मदन चारों ओर अन्धकार देखने लगा। सिर पर हाथ रखकर कुरसी पर बैठ गया।

कालीचरण ने बहुत दुःख प्रकट करके अन्त को कहा—अच्छा, आज शाम को मैं बड़े बाबू के मकान पर जाऊँगा। एक बार उन्हें समझाने की चेष्टा करूँगा।

"मैं भी चलूँ?"

"आज आपका न जाना ही ठीक है। आज न जानें उनका कैसा मिज़ाज हो। अगर कहेंगे तो फिर कल आपको ले चलूँगा।"

"उन्होंने क्या कहा, यह मुझे कैसे मालूम होगा? अगर कहिए तो रात को आपके घर पर आऊँ।"

"मेरे यहाँ आइएगा—तो रात को नव बजे के समय आइएगा। मैं इसी बीच में वहाँ होकर लौट आऊँगा।"

मदन उदास मुँह लिये घर गया।

चम्पा कई दिन से स्वामी के भाव बदलने को लख रही थी। आज मदन के मुख और आँखों की उदासी देखकर उसने शङ्कित होकर पूछा—क्या हुआ?

"बतलाऊँगा" कहकर हाथ-मुँह धोकर मदन ट्यूशन पर चला गया। वहाँ से ज़रा जल्दी छुट्टी करके आठ ही बजे कालीचरण के मकान पर पहुँच गया। कालीचरण उस समय तक लौटकर नहीं आया था।

मदन के थोड़ी देर ठहरने के बाद कालीचरण लौट आया। उत्कण्ठा के साथ मदन ने पूछा—क्या ख़बर है?

कालीचरण ने उदास भाव से कहा—कुछ विशेष सुविधा नहीं हुई।

"तो भी?"

कालीचरण—उन्होंने कहा, मदन ने हम लोगों का ऐसा अपमान किया है कि उसे किसी तरह आफ़िस में रखना ठीक नहीं जान पड़ता। तब मैं उनको समझाने लगा। बहुत कहने-सुनने से अन्त को उन्होंने कहा कि अच्छा, अगर वह कल आकर हम लोगों के साथ दो-एक गिलास शराब के पिये तो मैं समझ लूँगा कि वह निर्दोष है और हम लोगों से घृणा नहीं करता। ऐसा करने को वह राज़ी हो तो मैं उस रिपोर्ट को फाड़कर दूसरी रिपोर्ट लिख दूँगा। मैंने बहुत कहा, "उसने शराब न पीने की प्रतिज्ञा कर ली है। फिर आप क्यों इस बात के लिए उस ग़रीब की रोज़ी मारते हैं?" बड़े बाबू ने कहा—"क्यों, वह क्यों न पियेगा? मैं क्या उसका हाल नहीं जानता? जगमोहन ने ही तो सब मुझसे कहा है। एक समय वह पीपे के पीपे पी जाता था और

आज हमारे कहने से एक गिलास भी नहीं पी सकता! भाई, बड़े बाबू ने जनक की धनुष-भंग की ऐसी दृढ़ प्रतिज्ञ कर ली है।

मदन सिर पर हाथ रखकर चुपचाप बैठे-बैठे अपने नसी के बारे में सोचने लगा।

कालीचरण ने कहा—बतलाओ, क्या करोगे? आँख बन्द करके एक गिलास पी भी लीजिए। एक बार प्रतिज्ञा-भंग होने से ही—सो भी जीविका के लिए—आप जहन्नुम में न चले जायँगे। मैं आपसे बिना पूछे ही बड़े बाबू से कह आया हूँ कि 'अच्छा वह पी लेगा—लेकिन एक ही दिन। सो भी सबके सामने नहीं, उस समय वहाँ पर केवल हम तीन आदमी ही रहेंगे। यह काम वह केवल आपके सम्मान के ख़याल से ही करेगा। अगर आप कहें कि फिर दूसरे शनिवार को आकर वह इस काम को करे तो ऐसा न होगा।' बड़े बाबू इसी पर राज़ी हो गये। वे कल उस रिपोर्ट को दबा रखने को राज़ी हो गये हैं—बड़े साहब के सामने पेश न करेंगे। क्यों भाई मदन, आप राज़ी हैं न?

मदन का गला सूख गया था। उसने कष्ट से कहा—कल आफ़िस में आकर इसका जवाब दूँगा।

कालीचरण ने कहा—हाँ, अच्छी तरह सोचकर देख लीजिए। एक दिन शराब पीने से अगर जीविका बनी रहे तो मेरी समझ में उसे पी ही लेना चाहिए। और आप तो

विधवा ब्राह्मणी नहीं हैं कि ऐसा करने से आपका परलोक नसायगा ! कल शाम को आना—दोनों आदमी साथ चलेंगे ।

१०

घर लौटकर किसी तरह कुछ खा-पीकर, मदन बिछौने पर लेटा । और दिन, दिन भर परिश्रम करने के बाद, बिछौने पर लेटते ही नींद आ जाती थी; पर आज नींद का कहीं पता न था । आज उसके हृदय में और ही उधेड़-बुन लगी हुई है । प्रतिज्ञा को निबाहे या नौकरी को बचावे ? यह विषम समस्या सामने उपस्थित है । अगर नौकरी चली गई तो फिर क्या होगा ?

मदन ने मन में हिसाब करके देखा कि जिस दिन घर में रहने की मुद्दत पूरी होगी उसी दिन उसकी नौकरी का साल भी पूरा होगा । आफ़त पर आफ़त है । लड़कपन का यह पाठ उसे याद आ गया "विपद्विपदं सम्पत्सम्पदमनुबध्नाति" अर्थात् विपत्ति को विपत्ति और सम्पत्ति को सम्पत्ति बुलाती है । ये दो आफ़तें तो अपना कराल मुख फैलाये उसे ग्रसने के लिए आ ही रही हैं, लेकिन यह नहीं मालूम कि उनके पीछे और कौन-कौन विपत्तियाँ छिपी हुई हैं !

हाय, अब मदन क्या करे ? उसने जगमोहनसिंह के सामने बड़े बाबू की "दवा की शीशी" का ज़िक्र क्यों किया !—जाने दो, अब यह सोचने से क्या हो सकता

है ?—इस समय जगमोहनसिंह भी यहाँ नहीं हैं कि उन द्वारा बड़े बाबू से अपनी सिफ़ारिश कराता। अबकी वे कह गये हैं कि तीन महीने के पहले किसी तरह कलकत्ते आ न सकेंगे। उनको चिट्ठी लिखने या तार देने से भी कुछ नहीं हो सकता। समय कहाँ है? कल शाम तक बड़े बाबू अपेक्षा करेंगे; परसों रिपोर्ट लिखकर साहब के सामने पेश कर देंगे। रिपोर्ट पेश करते ही बड़े साहब उस पर सही कर देंगे—बस—सब साफ़ हो जायगा। उसके बाद न घर रहेगा और न खाने को अन्न मिलेगा। अच्छा, और किसी आफ़िस में क्या नौकरी न मिलेगी? किन्तु उसमें प्रधान बाधा यह है कि इस आफ़िस से उसे सार्टीफ़िकेट न मिलेगा। और अगर मिलेगा भी तो उसमें बड़े बाबू लिख देंगे कि काम करने में होशियार न होने के कारण साल भर के बाद छुड़ा दिया गया। वह सार्टीफ़िकेट कहीं दिखाने से लाभ के बदले हानि ही होगी।

मदन बिछौने पर पड़ा-पड़ा छटपटाता हुआ इसी तरह चिन्ता करने लगा। एकाएक उसे आँगन में बर्तन माँजने का शब्द सुनाई पड़ा। आज चम्पा ख़ुद बर्तन माँज रही थी; सुखिया को बुख़ार चढ़ आया था। यह पूस-माह की सर्दी, उस पर रात, चम्पा ख़ुद अपने हाथ से बर्तन माँज रही है। किन्तु एक दिन ऐसा भी था कि एक नहीं, दो-दो दासियाँ थीं। और अगर दोनों एक साथ बीमार पड़ जाती थीं तो भी घर की औरतों को बर्तन न माँजने पड़ते थे। साथ ही

मदन को यह भी स्मरण हो आया कि बासन माँजने की भी बहुत दिनों तक ज़रूरत न पड़ेगी। जब रास्ता ही घर होगा, भिक्षा ही जीविका होगी, तब बर्तन भी न होंगे और बर्तन माँज-कर कुछ खाने को भी न होगा। मदन की मानसिक दृष्टि के आगे एक दृश्य बायस्कोप के चित्र की तरह नाचने लगा। वह देखने लगा कि मदन आगे-आगे लड़की का हाथ पकड़े है और पीछे-पीछे चम्पा बच्चे को गोद में लिये है। दोनों जने रास्ते में भीख माँगते चले जा रहे हैं। वह जैसे श्याम बाज़ार में बड़े बाबू के घर के दरवाज़े पर ही खड़ा हुआ है। मदन की आँखों से आँसू बहने लगे।

और भी कुछ समय बीतने पर घर का काम-धन्धा करके चम्पा सोने आई। पलँग पर बैठकर कोमल स्वर से उसने कहा—तुम अभी तक नहीं सोये ?

गद्गद स्वर से मदन ने कहा—नहीं।

धीरे-धीरे मदन ने सब हाल चम्पा को सुनाया।

मदन की बात सुनकर दम भर सोचकर चम्पा ने कहा—तुमने क्या निश्चय किया ?

मदन ने कहा—मैं कुछ भी निश्चय नहीं कर सका। मैं कई दिन से बराबर सोच रहा हूँ, सोचकर अभी तक कुछ निश्चय नहीं कर सका। तुम क्या कहती हो ?

चम्पा अपने स्वामी के बालों में सादर उँगली चलाती हुई कहने लगी—मैं तुम्हारी अर्धाङ्गिनी हूँ। जब तक मेरे

शरीर में प्राण रहेंगे तब तक मैं तुम्हें धर्म-मार्ग पर चलने की ही सलाह दूँगी। अधर्म के मार्ग में जाने के लिए कभी न कहूँगी। देखो, बड़ी मुशकिल से अब तुम सँभले हो। अब जो एक बार तुम प्रतिज्ञा से टलोगे तो फिर अपने मन को किसी तरह सँभाल न सकोगे।

मदन ने कहा—सो क्या मैं जानता नहीं? मैं ख़ूब जानता हूँ। मैं यह भी जानता हूँ कि मेरा मन कैसा कमज़ोर है। मैं अगर अकेला होता—अविवाहित होता—तो मुझे तनिक भी दुबिधा न होती। मैं कहता—नौकरी गई तो जाने दो, और किसी उपाय से पेट भर लूँगा। लेकिन तुम लोगों के लिए—

हम कहते हैं, तुम ग़लत कहते हो मदन—ग़लत कहते हो। अगर तुम क्वारे होते तो अब तक कबके रसातल पहुँच गये होते! तुमने जो यह शराब न पीने की प्रतिज्ञा की है सो किसका मुख देखकर?

चम्पा ने कहा—तुम हमारे लिए कुछ चिन्ता न करो। उसका उपाय भगवान् करेंगे। तुम अपना काम करो—तुम धर्म-मार्ग में स्थिर रहो। अपना काम भगवान् आप करेंगे।

मदन ने कहा—तुमको कुछ चिन्ता नहीं है?

चम्पा—रत्ती भर नहीं। जो भगवान् सब जीवों को आहार देते हैं वे हम लोगों को भूखों न मारेंगे।

"तुम्हें यह दृढ़ विश्वास है?"

"हाँ, मुझे दृढ़ विश्वास है।"

"तो मैं कालीचरण से कह दूँगा कि मुझसे शराब न पी जायगी ?"

"कह देना।"

मदन थोड़ी देर तक सोचता रहा। उसके कान के पास जगमोहनसिंह का यह उपदेश गूँज उठा कि "छोड़िए न हिम्मत, बिसारिए न हरिनाम।"

उसने दृढ़ता के साथ कहा—अच्छा। यही कह दूँगा। मैं प्रतिज्ञा न तोड़ूँगा। नौकरी जाने दो। मैं अपने को और तुमको भगवान् के चरणों की शरण में छोड़ता हूँ।

मदन ने स्त्री को गले से लगाकर उसका मुँह चूम लिया।

११

आज रविवार है। जिस तारीख़ को मोहनलाल ने मदन को और एक साल की मुद्दत दी थी वही तारीख़ फिर आ गई। कल साल पूरा हो गया।

आज सबेरे से ही मदन के चेहरे पर उदासी छाई हुई है। चम्पा का मुँह भी सूखा हुआ है। किन्तु वह मन के भाव को मन में ही दबाकर भरसक अपने स्वामी का जी बह-लाने की चेष्टा कर रही है।

दस बजे मदन ने स्नान किया।

लड़के के लिए, लड़की के लिए और मदन के लिए तीन पीढ़े डाले गये। तीनों जने भोजन करने बैठे। ग़रीब गृहस्थ के यहाँ खाने का सामान ही क्या, वही दाल-रोटी—अधिक से अधिक कोई तरकारी। लड़का और लड़की रोज़ की तरह मज़े से ख़ुशी के साथ भोजन करने लगे। मदन भोजन करता था और बीच-बीच में बच्चों की ओर देखता जाता था।

उसे यही जान पड़ता था कि अब अधिक दिनों तक यहाँ बैठकर ये बच्चे भोजन न कर सकेंगे।

मदन से आज अच्छी तरह भोजन नहीं किया गया। किसी तरह आधे पेट खाकर, स्त्री के बहुत कहने-सुनने पर भी वह उठ खड़ा हुआ।

भोजन के बाद पलँग पर जाकर मदन लेट रहा। चम्पा भी खा-पीकर आई और स्वामी के पैर दबाने लगी।

मदन को नींद नहीं आई। दो बजे तक बिस्तर पर करवटें बदलते रहकर वह उठ बैठा। तमाखू भरने के लिए चिलम उठाई। चम्पा ने उसके हाथ से चिलम ले ली। वह ख़ुद तमाखू भरकर ले आई। मदन तमाखू पीने लगा। चम्पा पास ही पानदान सामने रखकर सुपारी काटने लगी।

तमाखू की चिलम जलाकर, एक लम्बी साँस लेकर मदन ने कहा—कहाँ—आज भी नोटिस-वोटिस कुछ नहीं आया! कल रियायती मुद्दत पूरी हो गई।

चम्पा ने कहा—तुम पर ऐसी विपत्ति है—नौकरी भी छूट गई है, यह खबर क्या मोहनलाल ने न सुनी होगी? ऐसे समय घर से निकल जाने के लिए वे कभी न कहेंगे। क्या उनके मन में तनिक भी दया-माया नहीं है!

मदन ने कहा—खूब दया-माया है! जान पड़ता है, काम-काज के झञ्झट में भूल गया है। देख लेना, आज ही कल में नोटिस आता होगा।

तीन बजे। लड़के ने कहा—बाबूजी, मेरा जूता फट गया है—तुमने कहा था कि एतवार को मोल ला दूँगा। आज एतवार है।

मदन ने बच्चे को गोद में लेकर कहा—आज नहीं बेटा, दूसरे एतवार को ले आऊँगा!

लड़के ने रूठ कर कहा—जब मैं कहता हूँ तभी आप कहते हैं कि और एतवार को!

लड़की ने आकर कहा—अम्मा, पैसा दो, लैया ले आऊँ, भूख लगी है।

चम्पा ने कहा—आज लैया न खाना, शाम होने दो, रोटी निकाल दूँगी।

लड़की ने पैसे के लिए बहुत से बहाने किये, पर आज किसी तरह चम्पा ने पैसा न दिया। इस समय एक-एक पैसा उसके लिए मोहर हो रहा है।

दासी ने आकर कहा—बहू, बड़ी देर हो गई। क्या बाज़ार न जाना होगा? आलू नहीं हैं।

चम्पा ने कहा—रहने दे सुखिया, आज आलू लाने की ज़रूरत नहीं। बैंगन रक्खे हैं, उन्हीं से इस समय काम चल जायगा।

मदन ने लम्बी साँस लेकर मन ही मन कहा—हाय भगवान्!

इसी समय, नीचे सदर दरवाज़े से किसी ने ज़ोर से पुकारा—बाबू साहब!

कौन पुकारता है? चम्पा और मदन दोनों खिड़की के पास जाकर देखने लगे। देखा, वर्दी पहने हुए एक चपरासी, हाथ में पियन-बुक लिये, दरवाज़े पर धक्के लगा रहा है।

चम्पा ने डरकर कहा—कौन?

मदन ने कहा—और कौन होगा! मोहन का चपरासी है—उसी के यहाँ की वर्दी है। नोटिस आया है।

किसी तरह सीढ़ी उतरकर, दरवाज़ा खोलकर, पियन-बुक पर दस्तख़त करके मदन चिट्ठी लेकर ऊपर आया। उसका चेहरा पीला पड़ गया। जिस हाथ में वह चिट्ठी लिये था वह थर-थर काँप रहा था।

चिट्ठी हाथ में लेकर मदन बिछौने पर बैठ गया। कहने लगा—चम्पा, तुम कहती थीं कि उनके क्या तनिक भी दया-माया नहीं है; देखो, कैसी दया-माया है। देखूँ, कुछ और समय दिया है, या आज ही मकान ख़ाली कर जाने के लिए लिखा है।

दत्त ने लिफ़ाफ़ा फाड़कर धीरे-धीरे चिट्ठी बाहर निकाली

मदन ने लिफ़ाफ़ा फाड़कर धीरे-धीरे चिट्ठी बाहर निकाली। तह खोलकर देखा—यह क्या! चिट्ठी में नत्थी की हुई एक चेक है! मदन के ही नाम चेक है—बारह हज़ार तीन सौ पचपन रुपये की चेक है। उस पर मोहनलाल के दस्तख़त हैं।

मदन को पहले अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ। उसके मत्थे में ज़ोर की सनसनाहट होने लगी। धीरे-धीरे आँखें बन्द करके उसने कहा—चम्पा, मेरे सिर पर पानी डालो।

चम्पा बहुत डरकर कलसे से ठण्डा पानी लाकर धीरे-धीरे स्वामी के सिर पर छोड़ने लगी। बिछौना तर हो गया। इसके बाद पंखा लेकर धीरे-धीरे हवा करने लगी।

कई मिनट इसी तरह बीते। मदन ने धीरे-धीरे फिर आँखें खोलीं। उसने चम्पा से कहा—चिन्ता न करो, ख़बर अच्छी है। भगवान् के कानों तक इतने दिनों के बाद पुकार पहुँची है।

मदन चिट्ठी पढ़ने लगा।

१२

चिट्ठी में लिखा था—

भवानीपुर,

भाई मदन,

लड़कपन से हम दोनों एक साथ खेले और रहे हैं। हमारा वह बाल्य-जीवन बहुत ही मधुर

और पवित्र था। हाय, अगर कहीं सदा वही अवस्था रहती तो कैसा अच्छा होता।

याद है? लड़कपन में अगर हममें से किसी को यह सन्देह होता था कि दूसरा कम स्नेह करता है, तो हमें कैसा कष्ट और दुःख होता था!

आज भी तुम्हारे ऊपर मेरा वही भाव है। लेकिन गत छः वर्षों से तुम्हारी यह धारणा हो गई है कि मैं उस पहले के स्नेह को बिलकुल भूलकर इस समय एक हृदयहीन अर्थ-पिशाच बन गया हूँ। मुझे ऐसा समझकर तुमने भी बहुत व्यथा पाई है और इसके लिए मुझे भी कम सोच नहीं हुआ। किन्तु ईश्वर की इच्छा से आज हम लोगों का इस प्रकार कष्ट उठाना सफल हो गया।

तुम जब पिता के मरने पर कुसंग में पड़कर अपना रुपया उड़ाने लगे तब बीच-बीच में कई बार मैंने तुमको डाँटा भी; लेकिन तुमने मेरे कहने पर ध्यान नहीं दिया। तुम जब अपने महाजन का रुपया चुकाने के लिए मेरे पास रुपया माँगने आये तब, इस ख्याल से कि तुम अपने घर मेरे पास रेहन रखकर फिर और कहीं न रख दो, मैंने "आई-गई" लिखा ली थी। मैं पाँच साल तक गुप्त रूप से बराबर तुम्हारा हाल जानने की कोशिश

करता रहा हूँ। जब मैंने देखा कि तुम्हारा चरित्र नहीं सुधरा, तब मन ही मन एक उपाय सोचा। अधःपतन के अन्धे गढ़े में गिर जाने पर भी तुम्हारे हृदय में एक प्रकाश की रेखा बची हुई थी; स्त्री और बाल-बच्चों पर तुम्हें माया-ममता थी। इस पर मेरा ध्यान गया। मैंने सोचा, स्त्री और बाल-बच्चों को खाने-पहनने का कष्ट देखकर अवश्य तुम्हारी बुद्धि सुधर जायगी। इसी से तुम्हारे दोनों घर तुमसे लेकर मैंने तुमको कङ्गाल बना दिया; ग़रीबी के गहरे गढ़े में गिरा दिया।

पुलीसकोर्ट में तुम्हारे मुक़द्दमे का हाल अख़बार में पढ़कर मैंने ही जगमोहनसिंह को तुम्हारे बचाने के लिए भेजा था। जगमोहन मेरे प्यारे मित्र हैं। मैंने ही हेडक्लर्क लाला काशीनाथ से कह-सुनकर तुम्हारी नौकरी का प्रबन्ध कर रक्खा था। पहले पहले नित्य एक रुपया तुमको दिलाना भी मेरा ही काम था। लड़का पढ़ाने के बहाने रात को साढ़े नव बजे तक रोक रखना भी मेरा ही उपदेश था। नव बजे के बाद शराब की दूकानें बन्द हो जाती हैं।

गुप्त रूप से पहले मैं तुम्हारे नित्य के कामों की ख़बर रखता था। जब मैंने देखा, दस महीने

तक तुमने शराब नहीं छुई तब मुझे तुम्हारे सुधरने की बहुत कुछ आशा हो गई। तथापि मुझको इस बात की आवश्यकता जान पड़ी कि अभी और कड़ी परीक्षा ली जाय। यह परीक्षा भी मेरी ही निकाली हुई है कि शराब पीने से नौकरी रहेगी और न पीने से जाती रहेगी। हेडक्लर्क बाबू केवल उपलक्ष्यमात्र थे।

आज देखता हूँ कि एक ओर भयानक ग़रीबी है और दूसरी ओर तनख़्वाह बढ़ने का लालच है। किन्तु तुम अपनी प्रतिज्ञा पर अटल हो। भाई, तुम्हारी सबसे कड़ी परीक्षा हो चुकी। अब कोई खटका नहीं है।

तुमने अपनी जो सम्पत्ति अपने हाथ नष्ट कर दी वह तो चली ही गई। लेकिन मैं जो कुछ बचा सका हूँ वह तुमको वापस करता हूँ।

तुमको मैंने जो रुपया क़र्ज़ दिया था उसका सूद बारह रुपये सैकड़े साल के हिसाब से लिखा हुआ था। बैंक से जो सूद मिलता है उसी हिसाब से सूद लगाकर मैंने पाँच साल के बाद अपना हिसाब किया था। तुमसे दोनों घर ले लेने के बाद एक हफ़्ते के भीतर ही उन घरों को अच्छे दामों पर बेचने का सुयोग मुझे मिल गया। मैंने

अपने हिसाब के रुपये निकालकर बाक़ी रुपया बैंक में जमा कर दिया था। साल भर में सूद और असल मिलाकर जो कुछ हुआ उतने की एक चेक इस पत्र में रक्खी हुई है।

तुम्हारे रहने के घर का कबाला भी वापस करता हूँ। उसके पीछे 'भरपाई' लिखकर मैंने दस्तख़त कर दिये हैं। इसकी रजिस्ट्री करा लेना।

पहले सोचा था, असल के पच्चीस हज़ार रुपये लेकर सब रुपये तुमको दे दूँ। किन्तु फिर सोचा कि वैसा करने से तुम्हारे मन में यह धारणा रह जायगी कि तुम मेरे यहाँ आर्थिक उपकार से दबे हुए हो। उससे तुम्हारे आत्मसम्मान को धक्का पहुँचता, इसी से मैंने वह राह छोड़ दी। तुमको इस समय जो रुपये भेजे हैं वे तुम्हारे ही हैं—जो तुमको मिलना चाहिए उससे एक पैसा भी अधिक नहीं है। अब तुम रुपये-पैसे के बारे में किसी के दबैल नहीं हो।

तुम अगर उस आफ़िस में नौकरी करना चाहो तो फिर मैं काशी बाबू से कह सकता हूँ। उनके कहने से बड़े साहब तुमको मुस्तकिल जगह दे देंगे। और अगर नौकरी करने की इच्छा न हो तो तुम इन बारह हज़ार रुपयों से दलाली या

और कोई रोज़गार मज़े में कर सकते हो। लेकिन मेरी समझ में बापदादे का रोज़गार करना ही अच्छा है। वह काम एक बार तुम कर भी चुके हो; बिल्कुल अनाड़ी नहीं हो।

भाई, मैं ख़ुद जाकर तुमको यह चेक देता और सब बातें कहता। किन्तु उसकी अपेक्षा पत्र लिखना ही मैंने सहज समझा। बहुत दिनों से तुमको देखा नहीं, एक दिन आना।

तुम्हारा बाल्यबन्धु—
मोहनलाल शर्म्मा।

पत्र पढ़कर मदन ने चम्पा को सुनाया। उसके बाद गाड़ी बुलाकर, घर में ताला बन्द करके सब लोग काली-घाट में काली की पूजा करने गये। लौटते समय मदन सपरिवार मोहनलाल के यहाँ गया। मोहनलाल की स्त्री ने चम्पा को शाम तक रोक रक्खा। शाम को वहाँ भोजन करके सब लोग जब घर आये तब गिर्जे की घड़ी में ठन्-ठन् करके ग्यारह बज रहे थे।

भ्रम-संशोधन

१

सुभद्रा लड़की वैसी सुन्दर नहीं कही जा सकती। उसका रङ्ग साँवला है, किन्तु चेहरा खूबसूरत है। उसके चेहरे पर एक तरह के सौन्दर्य की झलक सदा पाई जाती है। उम्र अठारह साल की होगी। उसके पिता राय बहादुर गोकुलदास एक प्रसिद्ध आर्यसमाजी हैं। इस समय वे अलीपुर (कलकत्ता) में सबजज हैं। भवानीपुर—बकुल बागान की गली में रहते हैं।

चार साल पहले प्राइवेट इम्तिहान देकर सुभद्रा एन्ट्रेन्स पास कर चुकी है। सबजज साहब के इष्टमित्रों में से कुछ का ख़याल था कि वे सुभद्रा को बेथून कालेज में भर्ती कराकर बी० ए०, एम० ए० पास करावेंगे। किन्तु उन्होंने कहा—कालेज की परीक्षा पास कराने का परिश्रम व्यर्थ है। कालेज में पढ़ाई ठीक नहीं होती, उलटे स्वास्थ्य ख़राब हो जाता है। उनका मत है कि घर की पढ़ाई ही असल पढ़ाई है। मतलब यह कि उन्होंने लड़की को कालेज में नहीं भेजा। लोग पीठ पीछे कहने लगे—सबजज साहब ने ख़र्च अधिक समझकर

भी लड़की को कालेज में भर्ती नहीं कराया। जो हो, सुभद्रा ने चार साल घर में बैठकर बहुत से अँगरेज़ो के ग्रन्थ पढ़ डाले हैं—लेकिन उनमें पन्द्रह आने उपन्यास थे।

पिता की एकमात्र दुलारी लड़की सुभद्रा जो चाहती है वही करके छोड़ती है। उसके एक कुतिया है। उसका नाम उसने विमला रानी रक्खा है। संक्षेप में बिमी कहती है। सुभद्रा उससे इस तरह बातचीत करती है जैसे वह किसी सखी से बातचीत कर रही हो। वह सब अपने मन का हाल बिमी से कहती है। सुभद्रा समझती है कि अन्यान्य पशु-पक्षियों की तरह बिमी भी सब बातें समझ सकती है, लेकिन बोल नहीं सकती।

असल बात अभी तक नहीं कही गई। ताज़े बैरिस्टर श्यामसुन्दरदास के साथ सुभद्रा का ब्याह पक्का हो गया है। दो-तीन साल हुए, मिस्टर दास विलायत से बैरिस्टरी पास करके आये हैं। दो-तीन साल में प्रैक्टिस भी जम गई है। हाईकोर्ट के पास ही श्यामसुन्दर ने चेम्बर्स किराये पर लिया है। वहीं उनका आफ़िस है और वहीं वे रहते हैं।

तीसरा पहर है। दूसरे खण्ड के एक सजे हुए कमरे में, पियानो के पास बैठी हुई सुभद्रा एक नये गीत का अभ्यास कर रही है। उसकी मा ने आज सन्ध्या के समय श्याम-सुन्दर का निमन्त्रण किया है। श्यामसुन्दर के आने पर सुभद्रा आज यही गीत गावेगी। कहना न होगा कि निमन्त्रण

हो या न हो, श्यामसुन्दर अकसर आया करते थे। एक महीने के बाद ब्याह होना निश्चित हो चुका है। बालीगंज में एक छोटा सा बँगला भी ठीक हो गया है। ब्याह के बाद दूलह-दुलहिन वहीं रहेंगे।

पियानो बजने लगा, गाना भी शुरू हुआ। श्रोता वहाँ पर केवल बिमी थी। पीछे के दोनों पैरों पर ऊँचे होकर, बैठकर कान उठाये निपुण समालोचक की तरह वह गीत सुन रही थी। बीच-बीच में उसके दोनों कान हिलते जाते थे। मनुष्यभाषा में कर्णकम्पन का अनुवाद शायद यह होगा कि "वाह, कैसा उम्दा गाना है।" इसी समय बाहर के आँगन में गाड़ी के आने की घरघराहट सुनाई पड़ी।

एक मिनट के बाद सोने का चशमा लगाये तीस वर्ष की अवस्थावाली एक औरत मोरक्को-चमड़े की एक छोटी पेनी-बैग हाथ में लटकाये घर के भीतर आई। उसको देखकर सुभद्रा उठकर खड़ी हो गई, और मुसकाकर बोली—कमला, आइए आइए। बहुत दिनों के बाद दर्शन दिये!

बिमी उस औरत को देखकर भोंकने लगी। यह कहा नहीं जा सकता कि गान में बाधा पड़ने के कारण वह नाराज़ हुई, अथवा, सुभद्रा की समझ के अनुसार, अन्तर्यामी होने के कारण कोई और भाव उसके मन में उपस्थित हुआ था।

कुतिया के एक चपत मारकर सुभद्रा ने कहा—बिमी, तू कैसी बेहूदा है! चुप।

कमला ने उदासी और गम्भीरता के भाव से कहा—तुम्हारी मा कहाँ हैं?

"भीतर हैं। आइए न" कहकर सुभद्रा उन्हें लेकर आगे चलने के लिए तैयार हुई। कमला ने उसे हाथ से हटाकर कहा—तुम न आओ। मुझे तुम्हारी मा से कुछ कहना है।

कमला का रंग-ढंग देखकर सुभद्रा को खटका हुआ। उसने कहा—क्यों? क्या हुआ?

कमला ने कुछ उत्तर नहीं दिया और पर्दा हटाकर सुभद्रा की मा के पास चली गई।

सुभद्रा ने पियानो बन्द कर दिया, और खुली खिड़की के पास एक मोढ़े पर बैठ गई। बिमी चट दौड़कर उसके पास जाकर बैठ गई।

सुभद्रा कुतिया का सिर पकड़कर हिलाती हुई कहने लगी—बिमी, क्या हुआ है? मुझको क्यों नहीं जाने दिया? क्या बात है? क्या कुछ मेरे सम्बन्ध की बात है? अगर यही हो तो तू पूँछ हिला।

बिमी इस दुलार से बहुत ही खुश होकर चित लेट गई। सामने की टाँगों से सुभद्रा का हाथ पकड़कर उसकी कोमल उँगलियों को मुख में लेने लगी। साथ ही उसके पूँछ पटकने की एक विचित्र चट-पट ध्वनि होने लगी।

"तू तो सब जानती है—कभी नहीं—कभी नहीं"—कहते-कहते सुभद्रा चुटकी बजाकर कुतिया को दुलराने लगी। किन्तु उससे विमला रानी का पूँछ हिलाना कम नहीं हुआ।

२

भीतर एक सोने के कमरे की खुली खिड़की के पास सुभद्रा की मा कुरसी पर बैठी हुई थी। चाकरानी उसके खुले हुए बालों को हाथ में लिये कंघी कर रही थी। पास ही एक छोटा गोल टेबिल था, उस पर संगमरमर जड़ा हुआ था। उस टेबिल के ऊपर एक शीशी में ख़ुशबूदार तेल रक्खा हुआ था। भीतर जाने के द्वार पर पर्दा पड़ा हुआ था। बाहर खड़े-खड़े कमला ने कहा—आ सकती हूँ ?

आवाज़ पहचानकर सुभद्रा की मा ने कहा—कौन, कमला ? आओ।

कमला ने प्रवेश करके सुभद्रा की मा को प्रणाम किया और एक कुरसी घसीटकर उस पर बैठ गई।

सुभद्रा की मा ने कहा—बहुत दिनों से तुम इधर नहीं आईं! कहो, सब अच्छी ख़बर है न ?

दूसरी ओर देखते-देखते विषाद-भरे स्वर में कमला ने कहा—ख़बर तो अच्छी नहीं है।

गृहिणी ने कहा—क्यों, क्या हुआ ?

कमला ने दम भर चुप रहकर अँगरेज़ी में कहा—अपनी इस दासी को हटा दीजिए।

आज्ञा पाकर दासी कमरे से चली गई। गृहिणी ने तब कहा—क्या हुआ कमला? मामला क्या है?

कमला—श्यामसुन्दर के साथ सुभद्रा का ब्याह क्या पक्का हो गया है?

गृहिणी—बिल्कुल पक्का। एक महीने के बाद हो भी जायगा। क्यों, क्या हुआ?

गृहिणी की आवाज़ जैसे भर्रा गई।

बैग के कुण्डे को उँगली से खटकाते हुए कमला ने कहा—बहुत ही ख़राब ख़बर लाई हूँ मिसेस टण्डन। मुझे माफ़ करना। यह ब्याह हो नहीं सकता।

यह सुनकर मिसेस टण्डन का मुँह सूख गया। उन्होंने काँपते हुए स्वर में कहा—नहीं हो सकता! क्यों?

सिर झुकाकर कमला ने धीरे-धीरे कहा—श्यामसुन्दर विलायत में ब्याह कर आये हैं।

"ब्याह कर आये हैं!"

"हाँ।"

"कहती क्या हो!—यह भी कहीं हो सकता है? ना, यह सम्भव नहीं! श्यामसुन्दर को हम लोग बराबर इतने

दिनों से अच्छा और धार्मिक लड़का समझते आते हैं। वह हमसे क्या ऐसी दग़ाबाज़ी करेगा? नहीं, यह बात विश्वास करने योग्य नहीं है। ज़रूर किसी शत्रु ने यह ख़बर उड़ाई है। अच्छा, तुमने किससे यह बात सुनी?"

"किसी ने मुझसे कही नहीं। दुर्भाग्य-वश इस बात का एक प्रमाण मेरे ही हाथ में पड़ गया।"

मिसेस टण्डन ने और भी आश्चर्य के साथ कहा—तुम्हें ऐसा क्या प्रमाण मिला है?

कमला ने तब धीरे-धीरे पेनी-बैग खोलकर उसमें से एक चिट्ठी निकालकर मिसेस टण्डन को दी।

लिफ़ाफ़े के ऊपर एक लाइन मोटे अक्षरों में लिखा था—"विलियम ह्वाइटले लिमिटेड।" उसके नीचे एक मोटा लकीर थी। बीच में टाइपराइटर से लिखा हुआ था—

मिसेस एस० एस० कक्कड़,
१२६ आवलेड रोड,
हैम्पस्टेड।

टिकट की जगह पर लाल रङ्ग का एक पेनी का टिकट लगा हुआ था।

काँपते हुए हाथ से गृहिणी ने लिफ़ाफ़े से पत्र निकाला। भीतर छपी हुई और टाइपराइटर से लिखी हुई जो इबारत थी उसका अविकल अनुवाद यहाँ दिया जाता है—

विलियम ह्वाइटले लिमिटेड
घुलाई-विभाग।

वेस्ट बोर्न ग्रोव्
लन्दन।
२६ जनवरी, १६०८.

प्रिय महाशया,

मैं आपके कल की तारीख़ के पत्र के उत्तर में खेद के साथ सूचित करता हूँ कि आपका एक रूमाल असावधानी के कारण गत बार के धुले कपड़ों के साथ नहीं भेजा गया। इस सप्ताह के कपड़ों के साथ भेज दिया जायगा। आशा है, इस ग़लती के लिए आप माफ़ करेंगी।

आपका विश्वस्त
विलियम ह्वाइटले लिमिटेड।

मिसेस एस० एस० कक्कड़,
१२६, आडलेड रोड,
हैम्पस्टेड।

इस पत्र को दो बार पढ़कर मिसेस टण्डन ने कहा—यह कौन मिसेस एस० एस० कक्कड़ है? यह चिट्ठी तुमको कहाँ मिली?

कमला ने कहा—मेरे भाई साहब श्यामसुन्दर के चेम्बर्स से मेरे पढ़ने के लिए एक उपन्यास माँग लाये थे। उसी पुस्तक में यह चिट्ठी रक्खी हुई थी।

सुनकर मिसेस टण्डन चुप हो गईं। कमला फिर कहने लगी—भाईजी ने कल तीसरे पहर पुस्तक ला दी थी। कल उसे देखने की फ़ुरसत नहीं मिली। आज दोपहर को उसे खोलकर देखा तो यह चिट्ठी उसमें मिली। ऊपर सिरनामा पढ़ते ही मैं चौंक पड़ी। मैंने सोचा—कैसी भयानक बात है!—विलायत में एक मिसेस एस० एस० कक्कड़ भी थी? पहले ख़याल हुआ कि सिरनामे पर भूल से मिसेस लिख दिया होगा। चिट्ठी खोलकर पढ़ने से सन्देह दूर हो जायगा। फिर सोचा, भूल हो या कुछ हो, पराई चिट्ठी पढ़ने का मुझे अधिकार ही क्या है? उस समय मेरे भीतर से जैसे कोई कह उठा—श्यामसुन्दर के साथ जब सुभद्रा का ब्याह होनेवाला है तब इस बारे में पता लगाने का तुमको पूर्ण अधिकार है। मैंने भी सोचकर देखा, बात तो ठीक है। अगर सचमुच श्यामसुन्दर विलायत में ब्याह कर आये हों तो सुभद्रा के साथ किसी तरह उनका ब्याह नहीं हो सकता। अगर वे उस स्त्री को फ़ारख़ती भी दे आये हों तो भी यह ब्याह न होना चाहिए। एक स्त्री के रहते दूसरी स्त्री से ब्याह करना हमारे समाज की सभ्यता के विरुद्ध बात है। इस कारण चिट्ठी देखने का केवल अधिकार ही मुझे नहीं है, वह मेरा कर्तव्य है। समाज के आगे, धर्म के आगे, इसके लिए मैं ज़िम्मेदार हूँ। इस तरह सोच-विचारकर अन्त को मैंने चिट्ठी खोलकर पढ़ ली। सन्देह मिट गया। लिखने में भूल

एक बार हो सकती है—तीन-तीन बार नहीं हो सकती। भीतर भी मिसेस और प्रिय महाशया मौजूद है।

गृहिणी ने बड़े कष्ट से कहा—अच्छा, तुम जो कहती हो वही होता तो उस स्त्री का असली नाम मेरी, नेली या जेसी लिखा होता। मिसेस एस० एस० कक्कड़ क्यों लिखा?

कमला ने कहा—अँगरेज़ी नियम यही है कि सधवा स्त्री का नाम उसके पति के आदि के अक्षरों को लेकर ही लिखा जाता है। अगर मिसेस नेली कक्कड़ लिखा जाता तो उससे मालूम पड़ता कि वह स्त्री विधवा है।

मिसेस टण्डन ने कहा—क्यों, हिन्दोस्तान में तो मिसेस शिवदेवी गुप्त, मिसेस सरोजिनी नायडू आदि सधवाओं के लिए भी लिखा जाता है।

कमला ने विज्ञ भाव से कहा—ऐसा लिखना ठीक नहीं। मैंने पिताजी से यह बात सुनी है।

कमला के बाप एक विलायत से परीक्षा पास कर आये हुए डाक्टर हैं। उनकी बात पर किसकी बात चल सकती थी?

गृहिणी ने गहरी लम्बी साँस लेकर कहा—पृथ्वी पर किसी का विश्वास न करना चाहिए। लड़की के लिए मन के माफ़िक़ वर मिलना हमारे समाज में कितना कठिन है, सो तो तुम जानती ही हो। मुझे आशा थी कि सुभद्रा से अब छुट्टी मिली। लेकिन बना-बनाया खेल बिगड़ गया।

उनकी आँखों में आँसू भर आये। यह देखकर कमला उठ खड़ी हुई और बोली—तो मैं जाती हूँ। चिट्ठी यहीं रख जाऊँ?

"रख दो।"

कमला ने चिट्ठी टेबिल के ऊपर रख दी। गृहिणी ने खड़े होकर कहा—यह बात किसी और से भी कही है?

कमला—नहीं, अभी नहीं कही।

कमला के दोनों हाथ पकड़कर मिसेस टण्डन ने कहा—देखो, अभी और किसी से यह बात न कहना।

कमला ने कहा—अच्छा, मैं और किसी से न कहूँगी। मैंने जो अपना कर्त्तव्य समझा वह किया। अब आप लोग जो अपना कर्त्तव्य समझें, करें। तथापि एक बात कहे रखती हूँ। श्यामसुन्दर ने ब्याह करके जब उस स्त्री को छोड़ ही दिया है तब सुभद्रा के साथ उसका ब्याह करने में कोई हर्ज नहीं है, यह सोचकर अगर आप लोग श्यामसुन्दर के साथ सुभद्रा का ब्याह करना चाहेंगे तो फिर मुझे सब हाल प्रकट करना ही पड़ेगा। मैं मित्रता और जान-पहचान के लिए भी आर्यसमाज के आदर्श को नीचे गिरने न दूँगी। नमस्ते।

कमला चल दी।

थोड़ी देर बाद ही सुभद्रा माता के कमरे में आई। आकर देखा, माता कठपुतली की तरह अटल-अचल बैठी हुई है। उसकी आँखों से क्रोध, घृणा और खीझ का विचित्र भाव झलक रहा है।

"क्या हुआ अम्मा?" कहकर सुभद्रा ने पास रक्खे हुए टेबिल पर से पत्र उठा लिया। पता पढ़कर कह उठी—यह क्या है अम्मा? देख लूँ?

गृहिणी ने कहा—देख लो।

पत्र खोलकर पढ़ने के उपरान्त सुभद्रा ने कहा—यह क्या है अम्मा?

गृहिणी ने कहा—श्यामसुन्दर के साथ तुम्हारा ब्याह नहीं हो सकता। वे विलायत में ब्याह कर आये हैं।

सुभद्रा ने पत्र को दुबारा पढ़ा। डाकघर की मोहर देखी। उसके बाद चिट्ठी को वहीं फेंककर वह जल्दी अपने सोने के कमरे में चली गई। वहाँ जाकर किवाड़े बन्द कर लिये।

२

एक घण्टे के बाद सबजज साहब के रिश्ते में भतीजे मिस्टर रामचन्द्र आये। ये नये-नये आर्यसमाज में भर्ती हुए हैं। कलकत्ते में इनकी एक सौदागरी की दूकान है। धर्म और नीति के सम्बन्ध में किसी की रत्ती भर लापर्वाही देखकर ये आपे से बाहर हो जाते हैं। खासकर विलायत से लौटे हुए नवयुवकों पर तो सदा खड्गहस्त रहते हैं।

रामचन्द्र ने आते ही चाची की शोचनीय दशा लख ली। उन्होंने पूछा—सुभद्रा कहाँ है?

"सो रही है।"

"इस समय सो रही है! क्यों, क्या तबियत अच्छी नहीं है?"

"नहीं।"

"तो फिर मामला क्या है चाचीजी? तुम्हारा चेहरा आज क्यों इतना उदास है? क्या रोई हो? तुम्हारी आँखें लाल हो आई हैं और फूली भी हैं। क्या हुआ है, बतलाओ तो।"

विशेष अनिच्छा रहते भी गृहिणी को रामचन्द्र से सब हाल कहना पड़ा।

पत्र पढ़कर, कुर्सी की पीठ पर ज़ोर देकर, दोनों आँखे ऊपर उठाकर रामचन्द्र कहने लगे—मैं तो शुरू से ही जानता हूँ कि एक न एक विघ्न अवश्य होगा। तुम यह सुनकर कि वे विलायत हो आये हैं, एकदम उन पर लट्टू हो गईं। विलायत से लौटे हुए लोग क्या ऐसे-वैसे होते हैं? ऐसा कोई बुरा काम नहीं, जिसे वे विलायत में जाकर न करते हों। और यहाँ लौटकर आने पर ही क्या है? उनमें से हर एक शराब के पीपे लुढ़काता है। हमारे अँगरेज़ी-पढ़े समाज की लड़कियों को भी न-जाने क्या रोग हो गया है कि विलायत न जानेवाला वर उन्हें पसन्द ही नहीं आता। क्यों भई, जो विलायत नहीं गये वे क्या आदमी ही नहीं? असल बात क्या है, जानती हो? वे यह सोचती हैं कि विलायत से लौटे हुए वर के साथ शादी होने से बेयरा, ख़ानसामा

सभी मेम साहब कहेंगे। बिटिया, बहू, आदि सम्बोधनों को सुनकर उनके बुख़ार सा चढ़ आता है। किन्तु इसमें लड़कियों को ही क्या दोष दिया जाय। यह इस युग का दोष है। बाहरी चमक-दमक पर ही लोग लट्टू हो जाते हैं। भीतर कुछ सार है या नहीं, इस पर कोई ध्यान नहीं देता। अच्छा, यह चिट्ठी तुमको मिली किस तरह ?

मिसेस टण्डन ने कहा—श्यामसुन्दर के चेम्बर्स से एक किताब एक आदमी पढ़ने को माँग लाया था। उसी किताब के भीतर यह चिट्ठी थी। अच्छा, तुम क्या समझते हो ? क्या श्यामसुन्दर सचमुच विलायत में ब्याह कर आये हैं ?

रामचन्द्र ने पत्र को फिर एक बार पढ़ा। अन्त को कहा—प्रमाण तो अकाट्य है।

गृहिणी ने कहा—अच्छा, यह भी तो हो सकता है कि विलायत में उन्होंने जिससे ब्याह किया था वह मर गई हो।

रामचन्द्र ने उत्तेजित स्वर में कहा—यह बात अगर होती तो उसे श्यामसुन्दर छिपाते क्यों ? वे स्पष्ट कह देते कि विलायत में मैंने ब्याह अवश्य किया था, लेकिन इस समय वह मेरी स्त्री मर गई है। साफ़ जान पड़ता है कि उन्होंने पहले वहाँ ब्याह कर लिया, किन्तु उन्हें पीछे अपनी भूल मालूम हुई। उन्होंने सोचा होगा कि उस स्त्री को हिन्दोस्तान में लाने से भारी लाञ्छना होगी। एक तो नये बैरिस्टर,

उस पर बाप-दादे की कुछ रक़म भी पास नहीं; मेम साहब के गाउन का बिल चुकाते-चुकाते दिवाला निकल जायगा। इसी से उस स्त्री को वहीं छोड़कर चले आये हैं। शायद वह स्त्री ग़रीब होगी। इसी से उन्हें यह खटका भी नहीं है कि वह सात समुद्र पार होकर हिन्दोस्तान में पता लगाते-लगाते चली आवेगी। ओह—कैसी भयानक बात है! कैसा विश्वासघात है! भगवान् ही जानें, उस अभागिन की इस समय क्या दशा होगी। शायद उसके दो-एक लड़के-बाले भी हो चुके होंगे। कैसा घोर अधर्म है!

थोड़ी देर तक सन्नाटा रहा। नौकर चाय लाकर रख गया।

उस कमरे के किनारे पर सुभद्रा के कमरे के बन्द दर्वाज़े के पास बिमी लेटी हुई थी। चाय पीने के समय बिमी रोज़ हाज़िर रहती है और दो-एक बिस्कुट पा जाती है। आज उसे पास न देखकर रामचन्द्र ने एक बिस्कुट हाथ में लेकर पुकारा—बिमी बिमी बिमी।

बिमी वहीं पर पड़े-पड़े पूँछ हिलाने लगी। लेकिन आई नहीं। बिस्कुट के लिए ऐसी लापर्वाही उसने पहले कभी नहीं दिखाई।

चाय पीते-पीते रामचन्द्र ने पूछा—चाचाजी अभी तक नहीं आये?

गृहिणी ने कहा—आज उन्हें आने में ज़रा देर होगी। कचहरी से कलकत्ते गये होंगे; वहाँ कोई सभा है।

रामचन्द्र के चाय पी चुकने पर गृहिणी ने कहा—तुम ज़रा बैठो, मैं सुभद्रा को देखूँ।

रामचन्द्र ने कहा—नहीं चाची, सुभद्रा को इस समय पश्चात्ताप करने दो—इससे उसका बड़ा उपकार होगा।

गृहिणी ने कहा—वह पश्चात्ताप क्यों करे? उसका क्या अपराध है? बेचारी रो-रोकर जान दे रही है। मैं उसे उठा लाऊँ।

रामचन्द्र ने खड़े होकर कहा—अब मैं न बैठूँगा, जाता हूँ। कल आकर चाचाजी से मुलाक़ात करूँगा।

गृहिणी ने कहा—नहीं रामू, तुम बैठो। आज और एक बड़ी मुशकिल हो गई है। मैंने डिनर के समय श्यामसुन्दर की दावत की थी; वे शायद आते ही हों। मेरी तबियत इस समय ऐसी ख़राब है कि मैं उनसे अच्छी तरह बातचीत न कर सकूँगी। इसलिए कम से कम अपने चाचा के न आने तक तुम यहाँ ठहरो। वे सात बजे के भीतर ही आ जायँगे।

रामचन्द्र ने उत्तेजना के स्वर में कहा—उस नराधम को अब भी घर में आने देना क्या ठीक है?

गृहिणी ने कहा—आज उनको न्यौता दिया गया है। आज तो उनसे पहले का ऐसा ही बरताव करना पड़ेगा। अपने चाचा को आ लेने दो। उनसे सलाह करके जो निश्चय होगा वह किया जायगा। आख़िर को उनका यहाँ आना-जाना बन्द किया ही जायगा।

रामचन्द्र ने कहा—किन्तु चाची, मुझे आशा नहीं है कि मैं श्यामसुन्दर से जी खोलकर अच्छी तरह बातचीत कर सकूँगा। शायद मैं अपने को न सँभाल सकूँ और मुँह से कोई ऐसी-वैसी कड़ी बात निकल जाय।

गृहिणी ने कहा—वह चर्चा छेड़ने की तुम्हें दरकार ही क्या है?—नहीं नहीं, किसी तरह का अशिष्ट व्यवहार उनसे न करना। ऐसा करना अनुचित है। तुम उनके पास बैठकर इधर-उधर की बातें करना। चाचा के आ जाने पर तुमको छुट्टी है।

मिसेस टण्डन सुभद्रा के कमरे की ओर चली गईं।

४

शाम के बाद श्यामसुन्दर काली किनारे की महीन चुनावदार धोती और ढीली आस्तीन का कुर्ता पहनकर, फेल्ट देकर, ऊपर से रेशमी चादर डालकर सुभद्रा के यहाँ आये। ड्राइंग-रूम में जाकर देखा, रामचन्द्र बैठे एक पुस्तक पढ़ रहे हैं।

"मिस्टर रामचन्द्र, नमस्ते" कहकर श्यामसुन्दर ने मन्द मुसकान के साथ प्रणाम किया।

रामचन्द्र ने खड़े होकर कहा—आइए, बैठिए।

उनकी आवाज़ गम्भीर थी। वे फिर बैठकर पुस्तक पढ़ने लगे।

श्यामसुन्दर इनकी प्रकृति को पहले से जानते थे। उन्होंने कहा—इतना न पढ़िए—इतना न पढ़िए, आँखें खराब हो जायँगी।

रामचन्द्र ने सोचा, अभ्यागत के पास बैठे रहते पुस्तक पढ़ना सभ्यता के विरुद्ध है। चाची के अनुरोध को स्मरण करके यथाशक्ति प्रसन्नता का भाव प्रकट करते हुए उन्होंने कहा—पार्कर की पुस्तक पढ़ता था। बड़ी अच्छी पुस्तक है। आपने पढ़ी है ?

रामचन्द्र को ज़रा जगाने के मतलब से बिल्कुल अनजान की तरह श्यामसुन्दर ने कहा—हाँ, पढ़ी क्यों नहीं है। गिलबर्ट पार्कर के लगभग सभी उपन्यास मैंने पढ़े हैं। यह कौन उपन्यास है ?

रामचन्द्र ने भीतर ही भीतर जलभुनकर कहा—उपन्यास ! उपन्यास कैसा ? यह थियोडोर पार्कर का "टेन सर्मन्स" नामक धर्मग्रन्थ है।

श्यामसुन्दर ने कहा—ओह—नहीं। यह कुछ मैंने नहीं पढ़ा।

रामचन्द्र फिर पुस्तक पढ़ने लगे। घड़ी भर बाद अपने को सँभालकर रामचन्द्र ने कहा—विलायत में रहते समय आपने क्या वहाँ के धर्मजीवन के सम्बन्ध में कुछ अनुशीलन किया था ? लिखने-पढ़ने से शायद समय ही न मिलता हो।

श्यामसुन्दर ने कहा—नहीं। मैं वहाँ हर घड़ी पढ़ा-लिखा ही न करता था। हाँ, बीच-बीच में गिर्जे गया हूँ, सो भी प्राय: औरतों (escort) के रक्षक की हैसियत से।

रामचन्द्र ने मन ही मन कहा कि हूँ! रक्षक या भक्षक की हैसियत से। फिर प्रकट रूप से कहा—लन्दन की सवाली स्ट्रीट में भयजी साहब का जो थीस्टिक चर्च है वहाँ आप कभी गये थे? सुना है, कभी-कभी वहाँ स्टपफोर्ड ब्रुक साहब आकर उपदेश करते हैं। हमारे आर्यसमाज और ब्राह्मसमाज के साथ उनकी विशेष सहानुभूति है।

श्यामसुन्दर ने भौंह टेढ़ी करके सोचने का भाव दिखलाकर कहा—कहाँ कहा? सवाली स्ट्रीट? कहाँ पर? हाँ याद आ गई। पिकाडिली में एक सवाली स्ट्रीट है। पैलेस में जाते-आते समय उस स्ट्रीट को देखा ज़रूर है; लेकिन उसके भीतर नहीं घुसा।

रामचन्द्र ने आश्चर्य के साथ कहा—पैलेस में जाते-आते?

श्यामसुन्दर ने कहा—हाँ। किन्तु पैलेस से राजभवन न समझ लीजिएगा। राजभवन में जाने-आने का सुयोग मुझे नहीं था। पैलेस है एक म्यूज़िकहाल, अर्थात् टिकिट बेचकर तमाशा दिखलाये जानेवाले थियेटर का घर। एक दफ़ा एक बड़ी दिल्लगी हुई। एक लार्डबिशप की स्त्री ने शाम को ट्रेन से स्टेशन पर उतरकर गाड़ी के कोचवान से कहा—पैलेस ले चलो। वे राजमहल—बकिंगहम पैलेस जानेवाली

थीं। कोचवान ने क्या किया, उन्हें सीधे म्यूज़िकहाल में पहुँचा दिया। उस लेडी के ऊपर तो एकदम जैसे वज्र गिर पड़ा—मालूम पड़ा, वे बेहोश हो जायँगी।

रामचन्द्र ने कहा—क्यों, उनकी यह हालत क्यों हुई ?

श्यामसुन्दर ने ऐबीपन की हँसी हँसकर कहा—म्यूज़िक-हाल ज़रा—उसे क्या कहते हैं—यही कि न, not quite the proper thing you know.

अब श्यामसुन्दर ज़ोर से हँसने लगे।

यह सुनकर रामचन्द्र भी अर्द्ध-वज्राहत से हो गये। उन्होंने सोचा, हमारे देश के नौजवान लोग विलायत जाकर विवेक-बुद्धि को एकदम तिलाञ्जलि दे बैठते हैं। वहाँ आप जाते थे, यह बात आपने बड़ी शेख़ी के साथ कही। चाचाजी अभी तक नहीं आये। मालूम नहीं कब तक इस नाछोड़बन्दे के साथ मुझे सिर खपाने का पाप भोगना पड़ेगा। मुझे तो अब इससे बात करना भारू हो गया है।

घर के किसी आदमी को अब तक आते न देखकर श्यामसुन्दर ज़रा अधीर हो उठे। और दफ़ा जब वे आते थे तब प्रायः दस-पन्द्रह मिनट तक अकेली सुभद्रा से ही उन्हें इस कमरे में बातचीत करने का मौक़ा मिलता था; उसके बाद सुभद्रा की मा आती थीं। श्यामसुन्दर अपने मन में कहते थे, आज अच्छी एक बला ने घेर रक्खा है। पर्दे की आड़ में भीतर कुछ शब्द होते ही वे चौंक उठते थे।

उनके लालच-भरे नेत्र बार-बार उस पर्दे की ओर खिंच जाते थे।

कुछ देर चुप रहकर रामचन्द्र ने कहा—लन्दन में आप कहाँ रहते थे ?

"आडलेड रोड, हाम्पस्टेड में।"

"मकान किराये पर लिया था ?"

"नहीं, इतने रुपये कहाँ थे ?"

"तब क्या होटल में रहते थे ?"

"होटल में भी नहीं; वहाँ भी बहुत खर्च होता है। मैंने रूम्स लिये थे। लैंडलेडी की तहत में मेरे रहने-सहने का प्रबन्ध था।"

"शायद मेस का ऐसा प्रबन्ध होगा ? वहाँ केवल मर्द ही रहते हैं, या स्त्रियाँ भी रहने पाती हैं ?"

"औरत-मर्द दोनों रहते हैं। बहुत से ग़रीब क्वारे लड़के, जो अलग मकान किराये पर लेकर उसका किराया नहीं दे सकते, रूम्स में रहते हैं। एक सोने का कमरा और एक बैठने का कमरा लेने से काम चल जाता है।"

"आपने के कमरे लिये थे ?"

"वही दो।"

रामचन्द्र ने मन में कहा—हूँ ! अकेले आदमी को दो कमरों की क्या ज़रूरत ? सोने के कमरे में क्या बैठा नहीं

जा सकता? ज़ाहिरा तौर पर कहा—आप क्या बराबर हाम्पस्टेड में ही रहते थे?

"नहीं। पहले साल भर के लगभग तो प्रिन्सेस स्कायर में रूम्स लेकर रहा था। गर्मियों की छुट्टियों में पेरिस घूमने गया था। वहाँ बहुत रुपये ख़र्च हो गये। वहाँ से लौटकर हाम्पस्टेड गया। उधर शहर का किनारा होने के कारण ख़र्च कुछ कम पड़ता है।"

रामचन्द्र ने मन में कहा—हूँ! प्रिन्सेस स्कायर में रहने के समय ही विवाह किया होगा—पेरिस में जाकर 'हनीमून' हो गया—लौटकर आने पर ख़र्च कम करने की ज़रूरत पड़ी। प्रकट में कहा—थियेटर शायद आप अक्सर जाते थे?

श्यामसुन्दर ने कहा—पहले साल भर तो ख़ूब जाता था। उसके बाद हाम्पस्टेड जाने पर जाना कम हो गया। हाम्पस्टेड से थियेटरहाल बहुत दूर है न। फिर भी बीच-बीच में कोई अच्छा नाटक होने पर चला जाता था।

रामचन्द्र ने मन में कहा—हाँ! केवल दूरी के कारण ही नहीं। पहले एक टिकट ख़रीदना पड़ता था, अब दो ख़रीदने पड़ते होंगे। वह कोई हिन्दुस्तानी लड़की तो थी नहीं कि स्वामी घूमने और नाटक देखने जायँ और वह रसोई-घर में बैठे! वह तो विलायती मेम थी!

श्यामसुन्दर से रहा नहीं गया। उसने पूछा—घर का और कोई आदमी आज यहाँ नहीं देख पड़ता?

रामचन्द्र ने कहा—चाचा साहब कचहरी से कलकत्ते गये हैं—वहाँ कोई सभा है। सुभद्रा सो रही है। चाची भी शायद उसी के पास हैं।

श्यामसुन्दर ने शङ्कित होकर कहा—सुभद्रा सो रही हैं? क्यों? उनकी तबियत कुछ सुस्त तो नहीं है?

"नहीं।"

"तो इस वक़् सो क्यों रही हैं?"

"मुझसे इस बारे में न पूछिए" कहकर रामचन्द्र ने फिर गम्भीर भाव धारण कर लिया।

श्यामसुन्दर कुछ न समझ सके। सुभद्रा इस समय सो रही है, लेकिन उसका कारण शरीर की अस्वस्थता नहीं है। क्या कारण है, यह भी रामचन्द्र बतलाना नहीं चाहते। वे इतने दिन से आते-जाते हैं, लेकिन और कभी तो ऐसा नहीं हुआ।

इसी समय आँगन में गाड़ी की घरघराहट सुनाई पड़ी।

रामचन्द्र ने कहा—जान पड़ता है, चाचाजी आ गये।

कचहरी की पोशाक पहने सबजज साहब आ गये। "श्यामसुन्दर! कब आये? रामचन्द्र आये हो? बैठो-बैठो" इत्यादि शिष्ट सम्भाषण करके सबजज साहब श्यामसुन्दर के पास बैठ गये। बैठकर सभा का वृत्तान्त सुनाने लगे। रामचन्द्र की जान बची। वे उठकर भीतर चले गये।

५

सुभद्रा के सोने के कमरे से मिला हुआ एक छोटा सा कमरा है। वही उसका ख़ास अपने सोने और बैठने का कमरा है। इसी कमरे में मिसेस टण्डन एक सोफ़े के किनारे पर बैठी हुई हैं। सुभद्रा उनकी गोद में सिर रक्खे लेटी हुई है। माता प्यार के साथ उसके बदन पर हाथ फेर रही है। चिमी फ़र्श पर बिछे हुए कार्पेट के ऊपर चिन्तित भाव से टकटकी लगाये सुभद्रा के मुख की ओर ताक रही है।

सुभद्रा कह रही है—घड़ी भर के लिए भी अब उसका मन यहाँ नहीं लगता। कल सबेरे की गाड़ी से वह मुंगेर या प्रयाग चली जायगी। मुँगेर में उसका बड़ा भाई और प्रयाग में उसकी बुआ हैं।

माता कहती है—वे घर आ लें। सलाह करके जो निश्चित होगा वह किया जायगा। इतनी उतावली करने से काम नहीं चल सकता। जिसने विश्वासघात किया उसके साथ ब्याह न होने में दुख की बात ही क्या है? बल्कि इसके लिए ईश्वर को धन्यवाद देना चाहिए कि समय रहते यह बात मालूम हो गई।

माता लड़की को धीरज दिलाने की यथासाध्य चेष्टा कर रही थी, किन्तु बेटी का रोना किसी तरह बन्द न होता था। आँचल के सिरे से अपने और बेटी के आँसू पोछने ही से

उन्हें फुरसत न थी। इसी समय बाहर खड़े होकर रामचन्द्र ने कहा—चाची, मैं आ सकता हूँ ?

सुभद्रा उठकर सोने के कमरे में चली गई और पर्दा घसीट लिया। रामचन्द्र ने भीतर जा करके कहा—सुभद्रा तबियत कैसी है ?

मिसेस टण्डन ने कहा—वह कल सबेरे की गाड़ी से मुँगेर या प्रयाग कहीं जाना चाहती है।

रामचन्द्र ने कहा—मुँगेर की अपेक्षा प्रयाग में ही बुआ के पास भेज देना अच्छा होगा। वहाँ उसका जी बहल जायगा।

इसी समय सबजज साहब ने भीतर आकर कहा—श्यामसुन्दर ड्राइङ्गरूम में बैठे हुए हैं—तुम यहाँ हो ? सुभद्रा कहाँ है ?

गृहिणी ने तब स्वामी से सब हाल ख़ुलासा करके कह सुनाया। चिट्ठी भी दिखलाई।

सब सुनकर हताशभाव से गोकुलदास पास की एक कुर्सी पर बैठ गये। दोनों हाथ से माथा पकड़कर सोचने लगे।

कुछ देर बाद रामचन्द्र से कहा—श्यामसुन्दर से यह बात पूछी थी ?

रामचन्द्र ने कहा—नहीं। साफ़-साफ़ नहीं पूछा। लेकिन बातचीत में जो कुछ ज़ाहिर हुआ है उससे यह बहुत सम्भव जान पड़ता है कि विलायत में उसका एक ब्याह हो चुका है।

जिस-जिस बात से उनका ऐसा ख़याल हुआ था उस-उस बात को रामचन्द्र ने दुहराया।

गोकुलदास उठकर खड़े हो गये। बोले—ना ना, उनसे साफ़-साफ़ पूछना चाहिए। इस प्रकार के दाव-पेच की क्या ज़रूरत? मैं अभी जाकर साफ़-साफ़ पूछता हूँ। चिट्ठी लाओ।

गोकुलदास जल्दी से बाहर चले गये।

सुभद्रा को अपने कमरे से सभी बातें सुन पड़ती थीं। वह कान खोल कर पिता के लौटने की प्रतीक्षा करने लगी।

पाँच मिनट बाद गोकुलदास ने लौट आकर कहा—श्याम-सुन्दर से विलायत में ब्याह करने की बात पूछते ही वे जैसे आसमान से गिर पड़े। कहा—Good Heavens! मैं विला-यत में ब्याह कर आया हूँ! कभी नहीं।—It is a vile calumny. आपसे किसने यह बात कही है? मैंने तब उन्हें चिट्ठी दिखलाई। चिट्ठी पढ़कर वे हँसने लगे। कहा—वाह! इसी चिट्ठी के कारण इतनी गड़बड़ मची हुई है? विलायत में घर की औरतें ही साधारणतः धोबी, मोची, ग्वाले और मांस बेचनेवालों से सौदा ख़रीदती और ज़रूरत पड़ने पर चिट्ठी-पत्री लिखती हैं। मर्द लोग इन कामों को नहीं देखते-सुनते। यही कारण है कि जब मैंने उनको चिट्ठी लिखी कि एक रूमाल नहीं आया तब उन्होंने समझा कि घर की मालकिन ने ही यह चिट्ठी लिखी होगी। उसी धारणा के अनुसार मिसेस एस० एस० ककड़ की कल्पना करके उन्होंने यह चिट्ठी भेजी।

मिसेस टण्डन ने कहा—तुमको इस पर विश्वास होता है?

गोकुलदास—विश्वास क्यों न होगा? मुझे तो इसमें अविश्वास के योग्य कुछ नहीं देख पड़ता। उन्होंने यह भी कहा कि हाल में उनके मित्र एक नये बैरिस्टर ने अपने घर की औरतों के लिए सँवार-सिंगार की कुछ चीज़ों का कैट-लाग विलायत की एक दूकान से माँगा था। विलायत से जो सूची आई उसके ऊपर लिखा था—मिस जे० सी० घोष। तबसे ये लोग उन्हें दिल्लगी के तौर पर मिस जे० सी० घोष कहते हैं।

ये सब बातें हो रही थीं। इसी समय श्यामसुन्दर ने बाहर खड़े होकर कहा—आ सकता हूँ?

गोकुलदास उन्हें भीतर ले आये। श्यामसुन्दर ने बैठ-कर मिसेस टण्डन को लक्ष्य करके कहा—मैंने जो कैफ़ियत दी है उससे भी अगर आप लोगों को सन्तोष न हो तो मैं अपने निर्दोष होने का प्रमाण भी दे सकता हूँ।

मिसेस टण्डन ने कहा—क्या प्रमाण?

श्यामसुन्दर ने कहा—मैं अगर सचमुच वहाँ ब्याह कर चुका होता तो इस चिट्ठी की तारीख़ के पहले और पीछे हर सप्ताह में धुलने को औरतों के कपड़े भी जाने चाहिए थे न?

मिसेस टण्डन ने कहा—ज़रूर।

श्यामसुन्दर ने कहा—विलायत में धोबी लगाने पर वे एक छोटा सा रजिस्टर देते हैं। हर सोमवार को कपड़े

धोने के लिए देते समय उस रजिस्टर के एक सफ़हे पर कपड़ों की लिस्ट लिख देनी पड़ती है। धोबी का आदमी जब मैले कपड़े लेने आता है तब वह रजिस्टर और गत वार की धुलाई ले जाता है। फिर शुक्रवार को शाम के वक्त धुले कपड़ों के साथ वह रजिस्टर लौट आता है। उसमें वे लोग धुलाई का विवरण भी लिख देते हैं, जैसे हर एक शर्ट चार पेनी, कालर एक पेनी, रूमाल आधी पेनी इत्यादि। मेरे चेम्बर्स मे विलायत के पुराने काग़ज़-पत्रों के साथ मेरे धोबी का रजिस्टर भी मौजूद है। आज ही सवेरे काग़ज़-पत्र उठाते समय वह मुझे मिला है। मेरी गाड़ी तैयार है। मैं अगर चेम्बर्स से वह रजिस्टर लाकर आपको दिखला दूँ कि उसमें कहीं औरतों के कपड़ों का ज़िक्र नहीं है, तब तो आप विश्वास करेंगी?

मिसेस टण्डन ने अपने स्वामी के मुख की तरफ़ देखा। गोकुलदास ने कहा—श्यामसुन्दर, तुम्हारी बात सर्वथा विश्वास करने योग्य है—कम से कम मुझे तो उस पर पूरा विश्वास है। तुम पर जो ऐसा सन्देह किया गया, उसके लिए हम लोग विशेष लज्जित हैं। तथापि मेरी राय यह है कि तुम वह रजिस्टर लाकर अगर किसी को कुछ सन्देह बाक़ी हो तो उसे भी मिटा दो।

मिसेस टण्डन ने कहा—मुझे भी अब कुछ सन्देह नहीं है। रजिस्टर लाकर दिखाना मेरे लिए तो बिल्कुल अनावश्यक

सुभद्रा ने तब बिमी को गोद से उतारकर श्यामसुन्द
लगकर उसकी छाती में अपना सिर रख दिया ।—पृ

है। हाँ, अगर तुम चाहो तो सुभद्रा को लाकर दिखा सकते हो।

"अच्छी बात है, मैं जाता हूँ" कहकर श्यामसुन्दर चल दिये।

आध घण्टे के बाद श्यामसुन्दर लौट आये। रजिस्टर हाथ में लिये दो-दो तीन-तीन सीढ़ी नाँघते हुए वे ऊपर आ गये। आकर देखा, ड्राइंगरूम में कोई आदमी नहीं है। फिर मालूम पड़ा, बाहर के खुले बरामदे में जैसे कोई है। श्यामसुन्दर बाहर खड़े हो गये। जान पड़ा किसी के बालों से जैसे एक तरह की महक आ रही है; रेशमी कपड़े का खसखस शब्द भी सुनाई पड़ा।

और भी निकट आकर श्यामसुन्दर ने पुकारा—सुभद्रा!

कोमल स्वर में उत्तर मिला—क्यों?

श्यामसुन्दर ने कहा—रजिस्टर लाया हूँ, यह देखो।

सुभद्रा ने रजिस्टर लेकर दूर फेंक दिया।

श्यामसुन्दर ने क्षोभ और अभिमान के साथ कहा—रजिस्टर देखना नहीं चाहतीं? सन्देह मिटाना नहीं चाहतीं? यही तुम्हारा विचार है?

सुभद्रा ने तब बिमी को गोद से उतारकर श्यामसुन्दर के गले लगकर उसकी छाती में अपना सिर रख दिया।

तावीज़

१

गोवर्द्धन सुकुल

लालगञ्ज गाँव में पहले एक हज़ार से अधिक (हिन्दू) जुलाहे रहते थे। गाँव के बीच में छोटा सा समथल मैदान था। उसी में सप्ताह में दो बार बाज़ार लगता था। उस बाज़ार में बहुत सी देसी धोती, अँगोछे और गाढ़े के थान वग़ैरह बिकते थे। दूर-दूर से पैकार आकर इन कपड़ों को ख़रीद ले जाते थे। लालगञ्ज का कपड़ा ख़ूब महीन या चिकना न होता था—पोशाकी कपड़ा यहाँ बहुत कम बनता था। यहाँ का कपड़ा अधिक टिकाऊ होने के कारण ही बहुत प्रसिद्ध था। यहाँ की धोतियों को लोग बड़े आदर से ख़रीदते थे। उस समय लालगञ्ज के जुलाहे रुपयेवाले थे। उनमें से बहुत से सालभर के बाद धूम-धाम से महादेवजी का सिंगार कराते थे। बहुतों के पक्के मकान थे। बहुतों के ज़मीन-जायदाद भी थी। उस समय वे अपढ़-मूर्ख न माने जाते थे। बहुत से जुलाहे लिख-पढ़ भी लेते थे। किन्तु काल की कैसी विचित्र गति है! ये सब बातें आजकल सपना

हो गई हैं। देश में विलायती कपड़े का अधिक प्रचार होने के साथ ही जुलाहों का रोज़गार बैठ गया। धीरे-धीरे उनको भोजन के लाले पड़ने लगे। इस समय भी लालगञ्ज में जुलाहे हैं, लेकिन बहुत थोड़े। उनमें से भी थोड़े से ही अपना रोज़गार करते हैं। जो लोग अपना रोज़गार करते हैं वे किसीतरह अपना गुज़र कर लेते हैं।

आज लालगञ्ज के बाज़ार में कल्लू जुलाहा धोतीके जोड़ बेचने आया है। जेठ का महीना है—सूर्य देव दिनभर पृथ्वी के ऊपर आग बरसाकर इस समय अस्ताचल की ओर जाने की तैयारी कर रहे हैं। एक बरगद के पेड़ की छाँह में, घास के ऊपर, कल्लू बैठा हुआ है। उसके सामने एक अँगोछा बिछा हुआ है। उस पर केवल काले किनारे के दो धोती-जोड़े रक्खे हुए हैं। इतना थोड़ा सामान लेकर आज तक कल्लू बाज़ार नहीं आया। किन्तु आज उसके पास एक पैसा भी नहीं है। घर में जो कुछ था वह जोड़-बटोरकर आज उसने ज़मींदार को पोत दे दिया है।

कल्लू की अवस्था चालीस बरस से ऊपर होगी। उसका शरीर दुबला-पतला है। सिर के बाल बड़े-बड़े हैं, आँखों के नीचे की हड्डियाँ बहुत ऊँची हो गई हैं, गाल पिचक गये हैं। उसका मुख आज जो ऐसा सूखा हुआ देख पड़ता है उसका कारण निरी धूप ही नहीं है। आज उसने अभी तक कुछ भोजन नहीं किया। दो भुने हुए आलू खाकर वह बाज़ार

चला आया है। आज जब वह जोड़े बेचकर घर जायगा तभी चूल्हा जलेगा। घर में उसकी स्त्री और दो बच्चे हैं। कल्लू को बड़ा कष्ट है।

दस कोस के बीच लालगञ्ज का बाज़ार ही प्रधान है। बहुत गाँवों के लोग बाज़ार करने आये हैं। भीड़ का अन्त नहीं। सभी दूकानदारों के पास गाहकों की भीड़ है। केवल कल्लू ही टूटी-फूटी आवाज़ में पुकार रहा है—"आइए, लीजिए, बहुत मज़बूत धोतियाँ हैं।" किन्तु उसकी इस पुकार पर कोई ध्यान नहीं देता। अन्त को एक बुड्ढा आकर खड़ा हुआ। कपड़ा देखा, भाव पूछा। कल्लू ने कहा—"ढाई रुपये का जोड़ा होगा।" भाव सुनकर बुड्ढे ने मुँह बनाकर धोती का जोड़ा वहीं डाल दिया और चल दिया। कल्लू ने बहुत पुकारा—"बूढ़े बाबा, आप क्या देंगे?—आप क्या देते हैं?" लेकिन बुड्ढे ने फिरकर भी नहीं देखा।

कल्लू मुँह उदास किये बैठा रहा। घर लौटने के लिए उसके प्राण छटपटा रहे थे। उसके तीन बरस के लड़के सुक्खू और पाँच बरस की लड़की नन्हकी ने सबेरे एक पैसे के चने भुनाकर बाँट खाये थे। उन्होंने रोटी के लिए इस समय तक रो-रोकर मचल-मचलकर अपनी मा को परेशान कर डाला होगा। कल्लू ने अपनी स्त्री के लिए भी दो भुने आलू रख दिये थे; पर उस अभागिन ने शायद खाये भी न होंगे। यह सब सोचते-सोचते कल्लू की आँखों में आँसू झलक आये।

किन्तु पहले उसकी ऐसी हालत न थी। कल्लू का बाप लल्लू एक इज़्ज़तदार जुलाहा था। उसके पक्का मकान था, बाग़ था, एक सौ बीघे अपनी ज़मीन थी। घर में बराबर दस करघे चलते थे; नौकर लोग काम करते थे। लल्लू की ज़िन्दगी में ही मञ्चेस्टर की कृपा से अधिकांश करघे बन्द हो गये थे। लेकिन खाने-पहनने की तङ्गी न थी। गृहस्थी के सब काम-काज मज़े में होते जाते थे। कल्लू के बालिग़ होने के पहले ही लल्लू मर गया। यह आज पचीस वर्ष की बात है। अब उसका वह पक्का मकान नहीं है—मरम्मत न होने के कारण गिर-गिरकर खँडहर हो गया है। उसके पास ही कल्लू ने कच्चा मकान बना लिया है। एक सौ बीघे ज़मीन में इस समय केवल तीन-चार बीघे बच रही है। बाक़ी ज़मीन नीलाम में गोवर्द्धन सुकुल ने ख़रीद ली है। बाग़ वग़ैरह भी इसी तरह सुकुलजी के हाथ में चला गया है। एक दिन में नहीं—एकबारगी नहीं, धीरे-धीरे। विपत्ति के समय काम आनेवाले सुकुलजी ही कल्लू के एकमात्र सहायक हैं, माँगते ही क़र्ज़ दे देते हैं। किन्तु सूद ज़रा कसकर लिखा लेते हैं। जो उसके लिए कभी कल्लू कुछ कहता है तो सुकुलजी कहते हैं—"भैया, मेरे भी घर-गिरिस्ती का ख़र्च है। उससे कम सूद लेने में मेरा गुज़र नहीं हो सकता।" किन्तु कल्लू बेचारे की समझ में यह बात किसी तरह नहीं आती थी कि दो-तीन साल बाद दस

रुपये के डेढ़ सौ रुपये कैसे हो जाते हैं और उसकी एकतर्फा डिक्री कैसे उसके ऊपर हो जाती है। पूछने से सुकुलजी कहते थे—अँगरेज़ों की अदालत और क़ानून समझना बड़ा कठिन है—क्या से क्या हो जाता है, कुछ समझ में ही नहीं आता। देखो, हमने शास्त्र, वेद, पुराण सब पढ़ा है तब भी यह कारवाई समझ में नहीं आती। फिर तुम तो जुलाहे के लड़के भुग्गे हो।

धूप धीरे-धीरे कम हो गई। हाट उठने लगी। जिन्हें दूर जाना है, वे अब ठहर नहीं सकते। हलवाई के यहाँ दो-एक पैसे का जलपान करके वे अपने-अपने गाँव की ओर चल दिये। बाज़ार के आसपास कुछ ऐसी दूकानें भी हैं जो हमेशा वहीं खुली रहती हैं। उनमें बिसाती, मोदी और बजाज़ों की दूकानें भी हैं। वहाँ सबसे बड़ी कपड़े की दूकान पूर्वोक्त सुकुलजी की ही है। उस पर इस समय वैसी भीड़ नहीं है। केवल दो-चार किसान बैठे लट्ठू मार्का, बैलमार्का विलायती धोतियों की देख-भाल करके सलाह कर रहे हैं कि कौन धोती खरीदें। पर कुछ निश्चय नहीं कर पाते।

अन्त को धोतियों के बिकने की आशा न रहने पर कल्लू उठ खड़ा हुआ। उसने निश्चय कर लिया कि सुकुलजी की दूकान में ही दोनों जोड़े दे दूँगा। कह-सुनकर आज इन धोतियों के नगद दाम माँग लूँगा। सुकुलजी की दूकान पर कपड़ा बेचना कल्लू को बिल्कुल पसन्द नहीं। बाज़ार

में ख़रीदार जो दाम देते हैं सो सुकुलजी से नहीं मिलते। जो कुछ दाम लगाते हैं सो भी नगद नहीं देते। कपड़ा बेच-कर दाम देते हैं। कल्लू का सुकुलजी के यहाँ बहुत दिनों से हिसाब चला आता है। वह मन में हिसाब करके समझता था कि इतने रुपये सुकुलजी से चाहिए। किन्तु सुकुलजी खाता देखकर उससे कहीं कम रुपये बतलाते थे। कुछ कहने पर कहते थे "भैया, हमारे यहाँ पक्के खाते में लिखा हुआ है। तुम्हारे कहने से क्या होता है? हिसाब-किताब मे कही गोलमाल हो सकता है?" बहुत ही ज़रूरत पड़े बिना कल्लू कभी सुकुलजी की दूकान पर कपड़े न ले जाता था।

अँगोछे में लपेटे हुए धोती के जोड़े लेकर कल्लू जब सुकुल की दूकान में गया तब सुकुलजी हुलास सूँघते हुए गल्ला सामने रक्खे पक्का खाता देख रहे थे। कल्लू ने हाथ जोड़कर कहा—दादा, दो जोड़े लाया हूँ, लीजिएगा?

"अच्छा दो, क्या दाम हैं?" कहकर सुकुलजी धोतियों का कपड़ा परखने लगे।

कल्लु ने कहा—दोनों जोड़ों के दाम चार रुपये हैं।

सुकुलजी ने ज़ोर से हँसकर कहा—चार रुपये! ख़री-दार भी तो इनके चार रुपये न देगा।

कल्लू ने कहा—क्यों न देगा दादा? अस्सी-नब्बे नम्बर के सूत का कपड़ा है। आपके यहाँ दोनों जोड़े पाँच रुपये में बिकेंगे।

सुकुल ने कहा—पागल है! पाँच रुपये कौन देगा? अब क्या वह ज़माना है? दो रुपये के विलायती जोड़े का कपड़ा मिलाकर देख। इसके अलावा ढाई रुपये जोड़े की देसी धोती कौन ख़रीदेगा भैया? बहुत कोई दाम लगावेगा तो इनके साढ़े चार रुपये देगा। सो भी न-जाने कब तक इन जोड़ों को जुगोना पड़ेगा। शायद होली के इस तरफ़ ये बिकेंगे भी नहीं।

कल्लू ने कहा—दादा, जोड़े ज़रूर बिक जायँगे। इन जोड़ों को बही पर न चढ़ाकर आज नगद चार रुपये मुझको दीजिए।

सुकुल ने कहा—नगद! कहाँ पाऊँ! बिक जायँ तब तो दाम मिलेंगे।

कल्लु ने हाथ जोड़कर कहा—दादा, आप ब्राह्मण हैं—देवता के तुल्य हैं। आपसे झूठ नहीं कहता। आज मुझे बड़ी ज़रूरत है—इसी से नगद रुपये माँगता हूँ।

सुकुल—क्या ज़रूरत है?

कल्लू—आज मेरे घर में खाने को अन्न नहीं है। इसी से आज दिन भर मेरे परिवार ने कुछ नहीं खाया। जब बाज़ार से ख़रीदकर ले जाऊँगा तब चूल्हा जलेगा।

सुकुल—यह तो तुम्हारा कहना ठीक है। लेकिन तुमको मेरी ओर भी तो देखना चाहिए। मैं नगद चार रुपये दूँगा। अगर होली तक माल पड़ा रहा तो उन रुपयों का सूद कितना होगा?

कल्लू—सूद की ओर न ध्यान दीजिए।

सुकुल—ध्यान दिये बिना काम कहाँ चल सकता है भाई? मैं तो गृहस्थ आदमी हूँ। अच्छा अच्छा, तुमको बड़ी ज़रूरत है तो इस हिसाब में दो रुपये ले जाओ।

सुकुल ने कैशबक्स से दो रुपये निकालकर कल्लू के हाथ में रख दिये। कुछ फ़ासले पर उनका बड़ा लड़का मुन्नू बैठा दूकान का काम कर रहा था। उसकी ओर घूमकर सुकुल ने कहा—मुन्नू, कल्लू के दो जोड़े अस्सी-नब्बे नम्बर के जमा करके उनकी बाबत चार रुपये जमा कर लो और ख़र्च में दो रुपये इसके नाम डाल दो।

अब सुकुलजी गम्भीर भाव से फिर खाता देखने लगे। हाथ जोड़कर कल्लू चल दिया।

मुन्नू ने जमा-ख़र्च के खाते में कल्लू के साढ़े तीन रुपये उन जोड़ों के बाबत जमा कर लिये। जुलाहों का हिसाब लिखते समय ज़बानी आज्ञा से इसी तरह छूट बाद देकर लिखना ही इस दूकान का नियम था। मुन्नू अपने बाप का लायक़ लड़का था।

२

नवीन संन्यासी

कल्लू एक रुपया भुनाकर, ज़रूरत का सामान ख़रीदकर, झटपट घर आया। उस समय शाम होनेवाली थी। भीतर

पैर रखते ही उसकी स्त्री ने आकर पूछा—क्योंजी, कपड़ा बिक गया ?

उदास भाव से कल्लू ने कहा—बाज़ार में कोई ख़रीदार नहीं मिला। सुकुल की दूकान में दे आया हूँ।

कल्लू के हाथ की पोटली की ओर देखकर जुलाहिन ने कहा—कुछ नगद दिया ?

"दो रुपये दिये। एक रुपया भुनाकर आठ आने का सौदा ले आया हूँ।"

"सिर्फ़ दो रुपये ?"

"यह भी नहीं देते थे। बहुत कह-सुनकर लाया हूँ।"

"फिर सुकुल की दूकान में क्यों गये ? वह ठग है—दग़ाबाज़ है—उसको क्या अभी तक तुमने नहीं पहचाना ?"

कल्लू ने जल्दी से कहा—छी छी, ऐसी बात न कहो नन्हकी की मा। बाम्हन की निन्दा न करनी चाहिए। बाम्हन कलजुग के देवता होते हैं।

"कलजुग के देवता के मुँह में आग ! जो देवता होते हैं वे क्या ऐसे ही काम करते हैं ? देवता क्या ग़रीबों का सत्यानास करते हैं ?"

कल्लू ने कुछ गर्म होकर कहा—ऐसी बात न कह। देख, इस जनम में हम इतना कष्ट पा रहे हैं। अब बाम्हन की निन्दा करके और पाप न लाद, नहीं तो नरक में भी जगह न मिलेगी।

जुलाहिन ने कुछ नर्म होकर कहा—जो बाज़ार में नहीं बिके थे तो दोनों जोड़े लौटाकर ले क्यों न आये? घर की सब पूजी सुकुल को खिला दी और फिर भी नहीं समझते।

"लौटा लाता तो आज लड़के-वालों को खिलाता क्या?"

जुलाहिन ने धीरे-धीरे कहा—उनको मैं खिला चुकी हूँ। आज जब तुम बाज़ार चले गये तब सुक्खु और नन्हकी दोनों भूख के मारे धरती पर लोट-लोटकर रोने लगे। मुझसे न देखा गया। मैं अपने गले की तबिज़िया बेचकर पाँच रुपये ले आई। आटा-दाल लाकर खाने को बनाया और उनको खिलाया।

यह सुनकर कल्लू काँपता हुआ वहीं बैठ गया। कहने लगा—अयँ?—यह क्या किया! वह तबिज़िया बेच डाली?

जुलाहिन ने रुआसी होकर कहा—मैं क्या करती? लड़के का रोना तुम भी न देख सकते! आँखों के सामने लड़की-लड़के का भूख से तड़पना भला कौन मा देख सकती है? मैं जानती थी कि तुम शाम तक लौटोगे। फिर और क्या बेचकर उनको खिलाती? घर में और क्या था?

अब जुलाहिन आँखों में आँचल लगाकर आँसुओं के वेग को सँभालने लगी।

"वह क्या आज की तबिज़िया थी? न-जाने कितनी पीढ़ियों से मेरे घर में है। उस तबिजिया का ऐसा परभाव है कि लड़के-वालों की तबियत कुछ ख़राब होने पर उसे धोकर वही

पानी पिला देने से वे चट चंगे हो जाते हैं। वही तबिज़िय तूने बेच डाली! उसकी बदौलत मैं आज तक सब मुसीबतों से छुटकारा पाता रहा हूँ। तबिज़िया चली गई, अब हमारा सत्यानास होने में कुछ कसर नहीं। न-जाने क्या होनेवाला है।"

"सो क्या मैं जानती नहीं कि वह तबिज़िया इतनी पुरानी थी। एक बात कहना मैं भूल गई। सराफ़ ने उस तबिज़िया को तोड़कर देखा तो उसके भीतर लिपटा हुआ भोजपत्र निकला। उसने मुझसे कहा—'जुलाहिन, इसमें कुछ मन्तर-वन्तर लिखा जान पड़ता है—इसे लेती जाओ।' उसे मैं लेती आई हूँ। मेरी समझ में, उसी भोजपत्र के मन्तर का सब पभाव है। सोने की महिमा नहीं। एक तामे की तबिजिया में वह भोजपत्र रख लेने से क्या काम नहीं चल सकता?"

कल्लू ने कुछ स्वस्थ होकर कहा—यह तो मुझे मालूम नहीं। किसी पढ़े-लिखे आदमी से पूछूँगा। जो कुछ हो गया सो तो हो गया। अब कुछ बस नहीं। सुक्खू और नन्हकी कहाँ है?

"सो गये हैं। तुम्हारे लिए रोटी रक्खी है। हाथ-पैर धोकर खा लो।"

"तुमने नहीं खाया?"

जुलाहिन ने कुछ मुसकाकर कहा—तुम अभी भूखे हो, कैसे खा लेती? तुम खाओ, मैं पीछे खाऊँगी।

हाथ-पैर धोकर कल्लू खाने बैठा। भोजन के बाद छप्पर के नीचे एक टूटी खटिया डालकर उस पर बैठकर कल्लू तमाखू पीने लगा। एक आले पर मिट्टी के तेल की डिबिया धुआँधार उगलकर धुँधला उजेला कर रही थी। रात एक पहर बीत गई होगी। सोने के लिए कल्लू उठकर खड़ा हुआ। इसी समय भीतर आकर एक अपरिचित आदमी ने कहा—वन्दे मातरम्।

इस शब्द से कल्लू चौंक पड़ा। आँगन की ओर देखा, आनेवाले के शरीर पर संन्यासियों का गेरुआ कपड़ा है। शङ्कित स्वर से कल्लू ने पूछा—आप कौन हैं?

"संन्यासी।"

तब कल्लू ने आँगन में आकर संन्यासी को प्रणाम किया और कहा—आइए आइए। भीतर दालान में पधारिए।

बुलाते ही संन्यासी दालान में आ गया। डिबिया के उजेले में कल्लू ने देखा, संन्यासी की अवस्था बीस बरस से अधिक न होगी। शरीर का रङ्ग गोरा है। देह से ख़ूब-सूरती टपकी पड़ती है। ऐसा सुन्दर कमसिन संन्यासी उसने और कभी नहीं देखा। कल्लू को संन्यासी पर बड़ी श्रद्धा हुई। जल्दी से पीढ़ा डालकर कहा—महाराज, इस पर बैठिए।

संन्यासी बैठ गया। कल्लू ने हाथ जोड़कर कहा—महाराज, किसलिए आपका पधारना हुआ है?

संन्यासी ने मीठी आवाज़ में कहा—आज रात को रहने के लिए मुझे थोड़ी सी जगह दे सकते हो ?

कल्लू ने आग्रह के साथ कहा—जब आप कृपा कर मेरे घर पर पधारे हैं तब जगह आप ही की है। सुक्खू की मा, ओ सुक्खू की मा, महाराज के पैर धोने के लिए लोटे में पानी तो ले आ।

सुक्खू की मा भोजन के बाद अँधेरे में खड़ी सब देख रही थी। कल्लू की बात सुनकर जल्दी से एक लोटा पानी ले आई। कल्लू संन्यासी के पैर धोने लगा। जुलाहिन ने कहा—महाराज, जान पड़ता है, आपकी सेवा नहीं हुई ?

"भोजन की बात कह रही हो ?"

"हाँ।"

संन्यासी ने ज़रा हँस कर कहा—ठीक तौर से भोजन तो नहीं हुआ। रास्ते में कुछ फल खाये थे। हमारे सम्प्रदाय का एक नियम यह भी है कि भूख-प्यास सहनी पड़ती है। इसी से मैं अक्सर भोजन मौजूद रहने पर भी नहीं खाता। आज कुछ न खाऊँगा।

कल्लू ने संन्यासी के पैर पोंछकर कहा—यह कैसे हो सकता है महाराज ? गृहस्थ के यहाँ साधु-संन्यासी भूखा रह जाय तो बड़ा अपराध होता है—गृहस्थ का भला नहीं होता। आप हम पर इतनी दया कीजिए।

संन्यासी रसोई बनाने लगा। कल्लू और उ

दूर पर बैठे रहे।—पृ० १२६

कल्लू की स्त्री ने कहा—हम बहुत ग़रीब हैं महाराज। हममें इतनी सामरथ नहीं कि आपकी सेवा कर सकें। घर मे चावल-दाल और आलू रक्खे हैं। अगर आप भोजन करने की दया करें तो हम अपने बड़े भाग समझें।

ग़रीब गृहस्थ के ऐसे आग्रह को देखकर संन्यासी ने कहा—अच्छी बात है, रसोई का सामान करो।

कल्लू ने स्त्री से कहा—तू जा, कुए पर से कलसी भर पानी ले आ। तब तक मैं इधर एक चूल्हा बनाता हूँ।

खुर्पा लेकर कल्लू दूसरे दालान में चूल्हा बनाने लगा।

३

"बाबा दयाल हुए हैं"

देखते ही देखते सब तैयारी हो गई। संन्यासी रसोई बनाने लगा। कल्लू और उसकी स्त्री दोनों दूर पर बैठे रहे। उन्होंने सोचा कि अभ्यागत को न-जाने किस समय किस चीज़ की ज़रूरत हो।

संन्यासी रसोई बनाते-बनाते तरह-तरह के प्रश्न करने लगा। लालगञ्ज में कौन-कौन जुलाहा रहता है, यहाँ के जुलाहों की दशा साधारणतः कैसी है, गाँव में धनी आदमी कौन-कौन है, यहाँ के धनी लोगों के आचरण कैसे हैं, इत्यादि। कल्लू का भी हाल पूछा। कल्लू और उसकी स्त्री दोनों ने मिलकर अपनी ग़रीबी का दुखड़ा रोया। पहले

अपना अच्छा ज़माना होने की बात भी कही। कल्लू के बार-बार हटकने पर भी उसकी स्त्री ने यह सब हाल कह दिया कि सुकुल ने किस तरह धीरे-धीरे उनका सर्वस्व हर लिया। सुकुल के रुपयेवाले होने की बात भी कही।

तब संन्यासी करघों के बारे में कल्लू से तरह-तरह के प्रश्न करने लगा। इस गाँव में पहले करघों की हालत कैसी थी, अब कैसी है, इस तरफ़ की औरतें चर्खे में अब सूत कातती हैं या नहीं, उस सूत का कपड़ा बुनाया जाय तो वह विलायती कपड़े से सस्ता बेचा जा सकता है या नहीं, इत्यादि बातें उसने पूछीं। क़ौमी पेशे की चर्चा छिड़ते ही कल्लू का मुँह खुल गया। उसने अपने हृदय की भाषा में यह सब बतलाया कि यहाँ के जुलाहों की पहले कैसी दशा थी और इस समय उनकी कैसी दुर्दशा है। उसने यह भी कहा कि मेरे ही पुरखे यहाँ के जुलाहों के मुखिया थे। उसके घर में ब्रह्मभोज और हिंडोले होते थे। किन्तु आज वह मुट्ठी भर अन्न के लिए कभी-कभी मुशकिल में पड़ जाता है। उसने चिराग़ उठाकर पहले के पक्के मकान का खँडहर भी संन्यासी को दिखा दिया। कल्लू की आँखों से आँसुओं की धारा बह चली।

उसे रोते देखकर संन्यासी ने कहा—रोओ न कल्लू, रोओ न। तुम्हारी दुःख की रात बीत चुकी है। स्वदेशी चीज़ों की ओर लोगों की रुचि बढ़ती जाती है। शीघ्र ही वह

दिन आनेवाला है जब तुमसे खपत भर का कपड़ा बुना नहीं जायगा। देश की कारीगरी पर, ख़ास कर कपड़ों के ऊपर भगवान् की शुभ दृष्टि हुई है। जुलाहों का रोना सुनकर भगवान् का आसन डुला है। रोओ न, चुप करो।

यह सुनकर कल्लू को और भी श्रद्धा हुई। उसने चुपके से स्त्री से कहा—देख, ये पहुँचे हुए सक़्स जान पड़ते हैं। यह जो कह रहे हैं वह मुझे बहुत ही ठीक जँचता है। मेरी समझ में ये ऊँचे दरजे के साधू हैं।

जुलाहिन ने चुपके-चुपके कहा—मुझे भी यही जान पड़ता है। देखते नहीं कैसा चेहरा है, जैसे किसी राजा का बालक हो। ये कोई देवता होंगे, मानुस का रूप धरकर आये हैं। उस तविजिया की बात इनसे पूछो न।

कल्लू ने कहा—तुम पूछो।

किन्तु जुलाहिन एकाएक उस चर्चा को उठा न सकी। पाँच मिनट तक किसी ने कुछ नहीं कहा।

अन्त को संन्यासी ने फिर जब दो-एक बातें कीं तब जुलाहिन ने कहा—बाबा, तुमसे एक मेरी अरज है।

युवक ने सुस्निग्ध स्वर में कहा—क्या, कहो।

जुलाहिन—मुझसे एक बड़ा अपराध बन पड़ा है।

युवक—क्या ?

तब जुलाहिन ने आदि से अन्त तक तविजिया का इतिहास कह सुनाया। यह भी ख़ुलासा करके बतलाया कि

आज ऐसी तबिजिया बेचने की नौबत क्यों आई। यह भी जताया कि तबिजिया न रहने से उसके स्वामी को घोर अमङ्गल की आशङ्का है। सब सुनकर संन्यासी ने कहा—वह भोजपत्र कहाँ है? लाओ, देखूँ उसमें क्या मन्त्र लिखा है।

जुलाहिन उसे ले आई। युवक ने सावधानी से उसे खोलकर उजेले में ख़ूब उलट-पलटकर देखा। इधर-उधर दो-एक महावर के दाग़ों के सिवा और कुछ न देख पड़ा। शायद किसी समय वे दाग़ अक्षर होंगे, पर इस समय बिल्कुल अस्पष्ट हैं। उसे फिर लपेटकर युवक संन्यासी ने कहा—अच्छा, फिर मैं इसे अच्छी तरह देखूँगा।

जुलाहिन ने कहा—हमने सोचा था कि सुकुलजी के पास जाकर इसके बारे में पूछेंगे, लेकिन हमारे ऐसे भाग हैं कि आप घर बैठे आ गये। आप ही इसे अच्छी तरह देखकर बताइए कि अब हमें इसके लिए क्या करना चाहिए? ऐसा करो बाबा कि किसी तरह की आफ़त न आवे।

संन्यासी चुपचाप रसोई बना रहा था। तबिजिया बिकने के करुण इतिहास ने उसके हृदय पर बड़ा भारी असर डाला।

कुछ देर बाद संन्यासी ने एकाएक कहा—अच्छा देखो, तुम अगर बहुत से रुपये पा जाओ तो क्या करो?

"कितने रुपये बाबा?"

"यही हज़ार—दो हज़ार—या पाँच हज़ार।"

जुलाहिन ने आग्रह के साथ पूछा—बाबा, तुम क्या सोना बनाना जानते हो?

कल्लू ने चुपके से अपनी स्त्री का हाथ दबाकर धीरे से कहा—चुप रहो। जान पड़ता है, बाबा दयाल हुए हैं। फिर प्रकाश्य रूप से कहा—बाबा, अगर रुपये हों तो मैं तीरथजात्रा और धरम-करम करूँ।

"केवल यही? यही करने से क्या रुपया स्वारथ होता है?

"मैं मूर्ख आदमी, और क्या जानूँ बाबा; आप ही बतलाइए।"

"मैं जो उपदेश दूँगा उसके माफ़िक़ अगर तुम चल सको और भगवान् अगर दया करें तो वे अवश्य पाँच हज़ार रुपये तक दे सकते हैं।"

कल्लू ने आग्रह के साथ कहा—अच्छा बाबा, जो आप कहेंगे वही मैं करूँगा।

रसोई बन गई। हाँड़ी उतारकर, हाथ धोकर, संन्यासी महाराज जुलाहे और जुलाहिन के आगे आकर बैठ गये। गम्भीर होकर उन्होंने कहा—अगर भगवान् तुम्हें पाँच हज़ार रुपये दें तो?—

जुलाहिन बीच ही में बोल उठी—कैसे देंगे बाबा?

कल्लू ने डाँटकर कहा—चुप रह!

युवक ने हँसकर कहा—भगवान् क्या अपने हाथ से किसी को देते हैं? किसी आदमी के हो द्वारा दिलाते हैं।

कल्लू, अगर भगवान् पाँच हज़ार रुपये तुम्हें दें तो तुम समझो कि एक हज़ार रुपये उन्होंने तुमको खाने-पीने के लिए दिये हैं। उन्हें तुम अपने काम में खर्च करना। बाक़ी चार हज़ार तुमको अपने करघों में लगाने पड़ेंगे। चार हज़ार रुपये लगाकर इस गाँव में तुम एक कारख़ाना खोल दो। जितने हो सकें उतने करघे चलाओ, और उनमें गाँव के और जुलाहों को नौकर रखकर कपड़े बुनवाओ। वह कपड़ा बिना कुछ मुनाफ़ा लिये—लागत की लागत में—तुमको बेचना पड़ेगा। क्यों, यह काम तुम कर सकोगे?

कल्लू ने बहुत उत्साहित होकर कहा—कर क्यों न सकूँगा? मेरे पुरखों से यही होता आता है।

संन्यासी—पर मुनाफ़ा न ले सकोगे। लागत भर लेकर बेचना पड़ेगा।

कल्लू—मैं अगर मुनाफ़ा लूँ तो—

संन्यासी—अच्छा-अच्छा, क़सम खाने की कोई ज़रूरत नहीं। एक हज़ार रुपया तुम्हारा होगा। जिस तरह चाहो, उसे खर्च कर सकते हो।

कल्लू—जी।

संन्यासी—अच्छा तो तुमको पाँच हज़ार रुपये मिलेंगे। किस तरह मिलेंगे सो भी बतलाता हूँ। भगवान् तुमको ये रुपये सुकुलजी के हाथों देंगे।

जुलाहिन ने कहा—सुकुल जब दे तब न—वह आप ही हड़प न कर ले।

संन्यासी ने हँसकर कहा—भगवान् के रुपये हज़म कर लेना सहज नहीं है। किस तरह सुकुल तुमको यह रुपया देगा, सो भी बतलाये देता हूँ। तुम्हारा यह खँडहर ख़रीदने के लिए सुकुल को एकाएक भारी आग्रह होगा। भगवान् ही उसे ऐसी बुद्धि देंगे। सुकुल पहले थोड़े रुपये देकर तुम्हारा खँडहर लेना चाहेगा। लेकिन तुम राज़ी न होना। धीरे-धीरे वह बढ़ेगा। तब भी तुम न देना। अन्त को जब पाँच हज़ार रुपये वह लगावे तब देना। नगद रुपये ले लेना बाक़ी न करना।

कल्लू—जो आज्ञा।

संन्यासी ने फिर कहा—मगर ख़बरदार! आज की इस बातचीत का हाल किसी को मालूम न हो। अगर एक आदमी के कान में भी यह भनक पड़ जायगी तो बना-बनाया खेल बिगड़ जायगा। रुपया-पैसा कुछ न मिलेगा। मेरे आने तक का हाल किसी को मालूम न हो।

कल्लू ने कहा—सुनती है न सुक्खू की मा, ख़बरदार। तेरे पेट में बात नहीं पचती।

जुलाहिन ने हाथ हिलाकर कहा—मैं वैसी औरत नहीं हूँ। जान भी जाती रहेगी तो यह बात किसी से न कहूँगी

संन्यासी ने कहा—अच्छी बात है। अब तुम जाकर सो रहो। मुझे कुछ पूजा-पाठ करना है। उसके बाद भोजन करके सोऊँगा। तुम खूब सबेरे उठकर मुझे जगा देना। कुछ रात रहते-रहते गाँव से चला जाऊँगा।

कल्लू ने हाथ जोड़कर कहा—पहले आप भोजन कर लीजिए, तब हम सोने जायँगे। शायद कुछ दरकार हो।

संन्यासी ने कहा—कुछ दरकार न होगा। तुम जाओ।

संन्यासी के सोने के लिए जगह दिखाकर दोनों औरत-मर्द सोने को चले गये। संन्यासी ने दीपक पास रखकर झोली से गीता की पुस्तक निकाली और पाठ करने लगा।

४

सुकुल का सपना

पिछली रात को जुलाहे और जुलाहिन ने आकर संन्यासी को जगा दिया।

संन्यासी ने चलने के लिए तैयार होकर कहा—तुम्हारे तावीज़ के भीतर का कागज़ बड़ी अच्छी चीज़ है। इस भोज-पत्र को, तुम जुलाहिन, ज़रा दिन चढ़ने पर सुकुल को जाकर दिखलाना। तावीज़ टूट जाने से कागज़ अशुद्ध हो गया है; सुकुलजी उसे शोधकर ताँबे या और किसी चीज़ के तावीज़ मे रख देंगे। गले में उसे पहन लेना। फिर कुछ खटका न रहेगा।
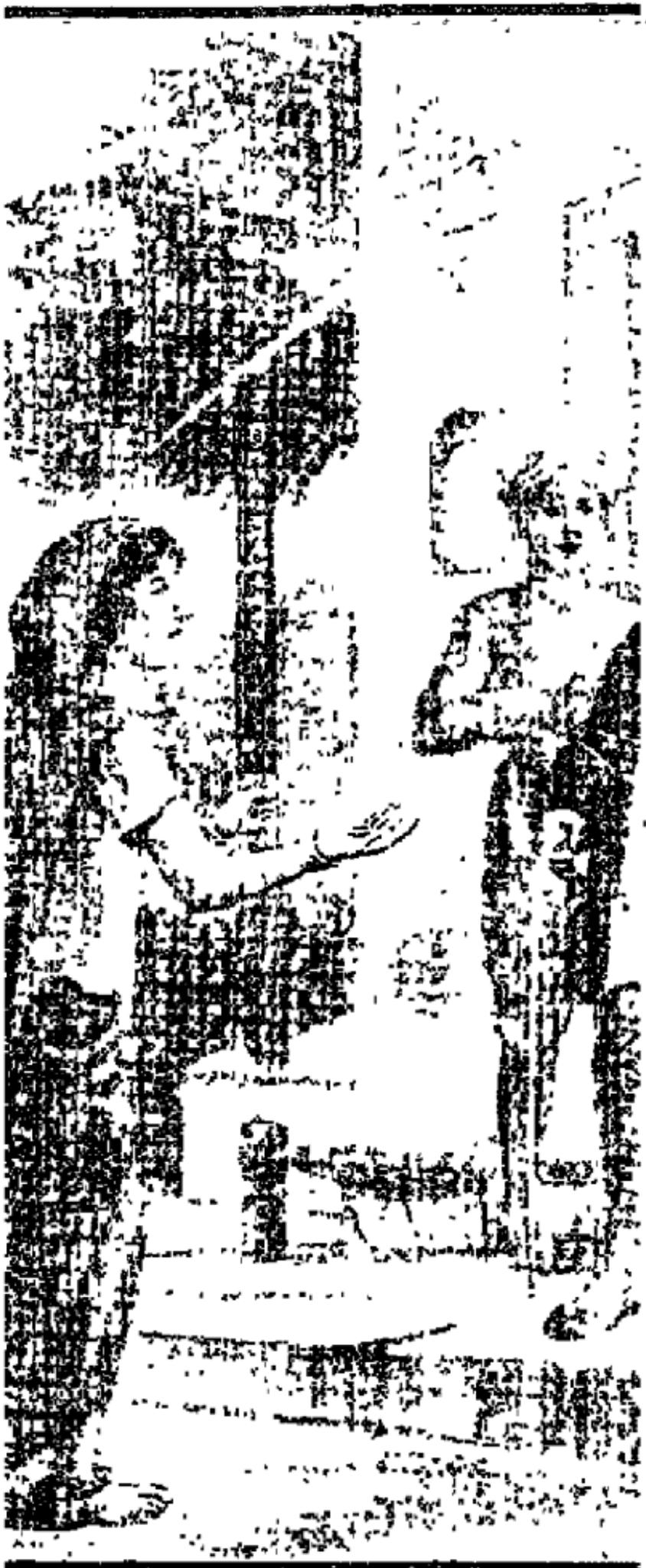
जुलाहिन ने उनको पैलगी करके कहा—
आफ़त में पड़े हैं।—पृ० १२

संन्यासी ने वह भोजपत्र जुलाहिन को दे दिया। जुलाहे ने अपने लड़के और लड़की को लाकर कहा—बाबा, इनको असीस दीजिए—अपने चरनों की धूल इनके माथे में लगाइए।

उन्हें आशीर्वाद देकर संन्यासी चल दिया।

जरा दिन चढ़ने पर जुलाहिन सुकुल के घर पहुँची। सुकुल उस समय पाठ-पूजा करके दूकान जाने को तैयार थे।

जुलाहिन ने उनको पैलगी करके कहा—दादा, हम बड़ी आफ़त में पड़े हैं।

सुकुल ने सोचा, ज़रूर कुछ क़र्ज़ लेने आई है। मुँह बनाकर बोले—अब फिर क्या हुआ ?

जुलाहिन ने तब तबिजिया का सब हाल कह सुनाया। कल्लू के डरने और घबराने का भी वर्णन किया। और यह भी कहा—दादा, यह तो सब सोने की महिमा नहीं थी; गुन तो मन्तुर ही में न था! सराफ़ ने वह भोजपत्तुर मुझे लौटा दिया है। मैं आपसे यही पूछने आई हूँ कि वह मन्तुर दूसरी तबिजिया में भर देने से क्या काम चल जायगा ?

"वह मन्त्र रामकवच है या शिवकवच ?"

"सो मैं क्या जानूँ दादा! यह देखो न।"

जुलाहिन ने वह भोजपत्र सुकुल के हाथ में दे दिया।

सुकुल ने जेब से चशमा निकालकर लगाया और उस भोजपत्र की लिखावट को पढ़ा। एकाएक उनके चेहरे की

रङ्गत बदल गई। हाथ-पैर थरथराने लगे। इस कारण पास पड़े हुए तख़्त पर बैठ गये।

जुलाहिन ने शङ्कित होकर पूछा—दादा, क्या हुआ?

सुकुल दोनों हाथ से सिर पकड़कर बोले—एकाएक चक्कर सा आ गया है, और कुछ नहीं।

"किसी को बुलाऊँ?"

"ना ना, अभी तबियत ठीक हो जायगी। ठीक हो गई। हाँ, तुम क्या कहती थीं? यह तबिजिया कहाँ पाई थी?"

"मेरे घर में बहुत दिनों से है। मैंने अपनी सास से सुना है कि सात पीढ़ियों से हमारे यहाँ यह तबिजिया है। मेरी सास ने अपनी सास से पाई थी, उनकी सास को उनकी सास ने दी थी। मेरी सास मरने के समय मुझसे कह गई थीं कि इसको अच्छी तरह रखना, खो न देना। तुम भी मरते समय अपनी बहू से कह देना।"

"उह, तब तो यह पुरानी चीज़ है। मगर मन्त्र इसमें बड़ा अच्छा लिखा है। ऐसा मन्त्र आजकल मिलता ही नहीं। इस भोजपत्र को केवल दूसरे तावीज़ में रख देने से ही काम नहीं चल सकता। टूट जाने से—छुआछूत हो जाने से—यह मन्त्र अशुद्ध हो गया है। पूजा करके इसको शुद्ध करना होगा और पूजा के लिए पत्रे में अच्छा दिन देखना पड़ेगा। एक काम करो, इसको अभी मेरे पास रहने दो। मैं अच्छा दिन देखकर, शुद्ध करके, एक ताँबे के तावीज़ में इसको रख दूँगा।"

"अच्छा, रहने दीजिए।"

सुकुल ने गला साफ़ करके, मुख को दयापूर्ण बनाकर, कहा—और जुलाहिन, तू बड़ी नादान है। हमारे घर आकर अगर लड़के-बच्चों के लिए तू चार रोटियाँ माँगती तो क्या दी न जातीं? तावीज़ बेचने क्यों गई? जुलाहे की समझ इसी को कहते हैं।

"अकिल होती तो ऐसी दुर्दसा क्यों होती दादा?"

"यही तो कहता हूँ। अच्छा, अब देर हुई—दूकान जाता हूँ।"

सुकुलजी दूकान चले गये।

सबेरे सुकुल ने कल्लू को बुलवा भेजा। कल्लू ने पैर छूकर कहा—दादा, आपने बुलाया है?

"हाँ, बैठो। एक बात पूछने के लिए तुमको बुला भेजा है। तुम्हारा घर-दुआर तो बिलकुल खँडहर पड़ा हुआ है।"

"क्या करूँ दादा, पेट भर खाने को ही नहीं मिलता, घर की मरम्मत कहाँ से करूँ? मिट्टी का कच्चा घर है, उसकी साल-साल मरम्मत हुए बिना वह कैसे ठहर सकता है?"

"यहाँ जो काली मल्लाह रहता था वह और गाँव में जाकर बसा है। उसका घर मैंने मोल ले लिया है।"

"हाँ, मैं जानता हूँ।"

"उसमें दो दालान, दो कोठरियाँ, रसोई-घर, गाय बाँधने की जगह और दो आम के पेड़ हैं। तुम उसी घर में जाकर न रहो। तुम्हारे घर के बदले में तुम्हें वह घर देने को मैं तैयार हूँ।"

संन्यासी महाराज की भविष्यद्वाणी को तीन ही दिन के भीतर फलते देखकर कल्लू के सिर से पैर तक रोएँ खड़े हो आये। अपने को सँभालकर उसने पूछा—क्यों दादा, मेरा मकान लेकर आप क्या करेंगे?

"मैं उस जगह शिवालय बनवाऊँगा। क्या कहते हो, दोगे? तुम्हारा कुछ नुकसान नहीं--फ़ायदा ही है। ऐसा अच्छा घर, ऐसे पेड़, मुफ़्त में ही मिले जाते हैं।"

कल्लू ने कई मिनट तक चुप रहकर कहा—महराज, वह बाप-दादे का घर है; मेरी सात पीढ़ियाँ इसमें गुज़री हैं।

सुकुल ने मीठी हँसी हँसकर कहा—हें—जुलाहे हो न! सात पीढ़ी गुज़रने से क्या हुआ? ऐसा अच्छा घर मुफ़्त मिलता है। हमको तो ऐसा सुभीते का घर और ऐसे पेड़ बदले में मिलें तो हम ख़ुशी से अपना मकान छोड़ दें।

कल्लू ने कुछ नहीं कहा। सिर झुकाये खड़ा रहा।

फिर मन को हर लेनेवाली हँसी हँसकर सुकुल ने कहा—तेरे मन का भाव मैं समझ गया। तू सोचता है कि मेरा घर-दुआर कुछ न होगा तो बीघा भर ज़मीन के ऊपर होगा।

वह घर शायद दस बिस्वे हो। अधिक देकर मैं कम क्यों लूँ? यही सोच रहा है न?

और कुछ जवाब सोच न सकने के कारण कल्लू ने कह दिया—हाँ महराज।

तब सुकुल ने ज़ोर से हँसकर कहा—कौन कहता है कि जुलाहे के बुद्धि नहीं होती? अच्छा भैया, अच्छा तेरे घर में जो अधिक ज़मीन है उसके लिए सौ दो सौ रुपये नगद भी ले लेना। क्यों, अब तो ख़ुश हुआ?

कल्लू फिर भी कुछ न बोला।

सुकुल ने कहा—शायद जुलाहिन से सलाह किये बिना तुम कुछ जवाब नहीं दे सकते। अच्छा जा, सलाह कर ले। तीसरे पहर आकर मुझसे कहना। नगद दो सौ रुपये और वह घर मिलेगा। मगर तुझे अपने घर की सारी ज़मीन दे देनी पड़ेगी।

कल्लू पैलगी करके चला आया।

तीसरे पहर सुकुलजी बड़े आग्रह के साथ कल्लू के आने की राह देखने लगे। लेकिन वह न आया। दिन डूबते समय वे ख़ुद टहलते-टहलते कल्लू के घर पधारे। जाकर बोले—क्यों रे कल्लू, तुम दोनों ने मिलकर क्या निश्चय किया?

कल्लू ने सिर झुकाकर कहा—जी, सात पीढ़ी का घर कैसे छोड़ूँ!

सुकुल ने कहा—यही एक बात सीख रक्खी है कि सात पीढ़ी का घर है !

सुकुलजी दीवार के आसपास टहलने लगे। फिर बोले—महादेव बाबा की स्थापना करने के लिए मेरी इस समय बड़ी ही इच्छा है; इसी से तेरी इतनी ख़ुशामद करता हूँ। नहीं तो यह घर लेकर मैं क्या करूँगा? अच्छा, दो सौ रुपये से तेरा जी न भरता हो तो और कुछ ले ले। अच्छा, पाँच सौ रुपये और वह घर दूँगा।

कल्लू चुप है। सुकुल ने कल्लू के मुँह की ओर कुछ देर देखकर कहा—क्या कहता है?

"महराज, मेरा तो जी नहीं चाहता। मेरी समझ में तो यह आता है कि यह बाप-दादे का घर बेच डालने से बड़ी बदनामी होगी।"

"हुँ:—बदनामी का बड़ा भारी ख़याल है! घर का हाल यह है कि सबेरे चूल्हा जलने का ठिकाना नहीं। पाँच सौ रुपये देता हूँ। अगर ले लेगा तो जन्म भर पैर पर पैर रक्खे बैठा रहेगा, खाने-पहनने की तकलीफ़ न होगी। तेरे भाग्य में ही सुख नहीं बदा है। तू क्या करे।"

अब सुकुल फिर खँडहर के पास टहलने लगे। जहाँ पर कल्लू के पुरखों के पक्के मकान की ईंटों का ढेर पड़ा था वहाँ खड़े होकर सुकुल मन ही मन कहने लगे—"ये छोटी पतली ईंटें बड़ी मज़बूत होती हैं। ऐसी ईंटें आजकल नहीं बनतीं।

इस समय की ईंटें हाथ से गिरते ही टूट जाती हैं। पुराने ज़माने की ईंटें इस समय भी ऐसी मज़बूत हैं कि बसूली से तोड़े नहीं टूटतीं। ये जो ईंटें पड़ी हैं इन्हीं के दाम पाँच सौ रुपये होंगे। इन ईंटों से मन्दिर बनाया जायगा तो बड़ा पुख़्ता होगा।" इसके बाद ज़ोर से कहने लगे—कल्लू, मैं दाम बढ़ाता जाता हूँ, इससे तू समझता होगा, मुझे बड़ी गरज़ है। अच्छा, सुन। अगर तू इन ईंटों-सहित सब ज़मीन देगा तो मैं तुझे हज़ार रुपये नगद और वह मकान दूँगा। बस, अब इससे एक पैसा अधिक न दूँगा। इससे अधिक मैं कहाँ पाऊँगा? मैं भी गिरिस्ती और बाल-बच्चोंवाला आदमी हूँ। हज़ार रुपये देने में ही मेरी जीभ निकल आवेगी। अगर हज़ार रुपये में राज़ी हो तो ले लूँगा। नहीं तो महादेव बाबा का मन्दिर बनवाने का विचार छोड़ दूँगा।

सुकुलजी तीक्ष्ण दृष्टि से कल्लू की ओर देखने लगे।

कल्लू ने कुछ जवाब न दिया। तब उसे छोड़कर सुकुलजी जुलाहिन से कहने लगे—जुलाहिन, कल्लू तो बूढ़ा हो गया है, उसकी तो बुद्धि ठिकाने नहीं है। तू तो अभी जवान है। क्या तू भी नहीं समझती कि इस घर को और कोई सौ रुपये को भी न पूछेगा। उसके मैं हज़ार रुपये दे रहा हूँ। फिर यह भी नहीं कि मकान बेच डालने से तुम्हारे रहने का ठिकाना नहीं है। एक मकान भी दे रहा हूँ। काली मल्लाह का घर तो तूने देखा होगा? तू ही कल्लू को

क्यों नहीं समझाती? हज़ार रुपये क्या थोड़े होते हैं? तुम्हारी यह भात राँधने की हाँड़ी उन रुपयों से भर जायगी। आज मैं जाता हूँ। पूजा-पाठ करने का समय बीता जाता है। कल्लू को अच्छी तरह समझाकर कल सवेरे आओ। कचहरी में चलकर लिखा-पढ़ी हो जायगी, वहाँ से हज़ार रुपये की गठरी लेकर घर चली आना। अच्छा, जाता हूँ।

दूसरे दिन सवेरे जुलाहा या जुलाहिन कोई भी सुकुलजी के पास नहीं गया। तब उन्होंने आदमी के हाथ उनको बुलवा भेजा। उनके आने पर पूछा—क्योंजी, क्या सलाह ठहरी?

कल्लू ने कहा—सलाह क्या ठहरेगी दादा? मकान न बेचेंगे।

"आख़िर क्यों?"

"बाप रे, सात पीढ़ियों का घर मैं कैसे बेच सकता हूँ? घर बेचने से मेरे लड़के-बालों का भला न होगा।"

"छिः, तू बड़ा भारी पण्डित हो गया है! भला न होगा! क्यों, भला क्यों न होगा? तेरे घर में क्या कोई क़साई-ख़ाना खोलता है? महादेवजी का मन्दिर बनेगा, दिन-रात धूप-आरती होगी, पूजा होगी, घण्टा बजेगा। जानता है, इससे तेरी सात पीढ़ियाँ तर जायँगी।"

कल्लू फिर पहले की तरह चुप रहा।

कुछ देर राह देखकर सुकुल ने कहा—अच्छा, कितने रुपये लेकर देगा, कुछ बतला तो सही। तू क्या माँगता है?

कल्लू चुप है।

सुकुल ने हँसते-हँसते कहा—दो हज़ार लेगा?

कल्लू फिर कुछ नहीं बोला।

सुकुल ने तब गम्भीर भाव से कहा—हँसी-ठट्ठे की बात नहीं है। मैं सचमुच तुझे दो हज़ार तक दूँगा। असल बात यह है कि बाबा महादेव ने मुझसे सपने में कहा है कि कल्लू जुलाहे का घर बड़ी पवित्र जगह है। उसी जगह एक मन्दिर बनवाकर तुम मेरी स्थापना करो। इसी से मैं तेरे घर के लिए इतना कह-सुन रहा हूँ। नहीं तो दुनिया में शिव की स्थापना के लिए क्या और जगह ही न थी? मैं अपने घर में ही यह काम कर सकता था। आज सबेरे खा-पी ले। चल, दोनों जने कचहरी चलकर लिखा-पढ़ी कर डालें। कल दिन भी अच्छा है। लिखा-पढ़ी के बाद एक हाथ से तेरा कबाला लूँगा और दूसरे हाथ से दो हज़ार रुपये गिन दूँगा। क्या कहता है?

कल्लू ने कहा—यह मुझसे न होगा।

सुकुल ने लम्बी साँस लेकर कहा—शास्त्र में जो कहा है कि जैसे नसीब होते हैं वैसी ही बुद्धि होती है, सो बहुत ठीक है। तेरे नसीब में सुख भोगना बदा ही नहीं—नहीं तो तेरी ऐसी समझ ही क्यों होती! सुन। पहले ज़माने में

एक ब्राह्मण देवता बड़े ही गरीब थे। खाने को न जुड़ता था। लड़के-बाले भी पेट भरकर खाने को न पाते थे। ब्राह्मण रोज़ सवेरे भीख माँगने निकलते थे। सात गाँवों में भीख माँगकर शाम को घर आते थे। एक दिन वे इसी तरह लौटे आ रहे थे। आकाश में रथ पर चढ़े हुए शिव और पार्वती दोनों जा रहे थे। पार्वती ने कहा—"स्वामी, इस ब्राह्मण का कष्ट देखकर मुझको बड़ा दुःख होता है। घाम में, जाड़े में, बरसात में सदा इसी तरह सात गाँवों में जाकर भीख माँगता है तब भी पेट भर खाने को नहीं मिलता। तुम इसे कुछ धन दो, जिससे इसे इस कष्ट से छुटकारा मिल जाय।" महादेव ने हँसकर कहा—"पगली! उसके भाग्य में धन लिखा ही नहीं है—मैं उसे कैसे और कहाँ से दे सकता हूँ?" पार्वती ने कहा—"तुम्हारी भी ऐसी ही बातें रहती हैं! तुम अगर इसे धन दोगे तो यह ग़रीब हा बना रहेगा!" महादेव ने कहा—"अच्छा, तो देख लो। ब्राह्मण जिस राह में जा रहा है उसी राह में मैं एक अशर्फियों का तोड़ा डाले देता हूँ। देखो, वह पाता है या नहीं।" अब महादेव ने कुछ दूर पर अशर्फ़ियों की थैली डाल दी। चलते-चलते ब्राह्मण ने सोचा कि इस राह में रोज़ आने-जाने से मुझे ऐसा अभ्यास हो गया है कि शायद मैं आँख मूँदकर भी इस राह में चल सकता हूँ। अच्छा देखूँ, चल सकता हूँ कि नहीं। बस, वह ब्राह्मण आँखें बन्द किये ही उस जगह

से निकल गया जहाँ अशर्फ़ियों की थैली पड़ी थी। सो भैया, तेरी यही गति देख पड़ती है। मैं किसी तरह दो हज़ार रुपये से अधिक नहीं दे सकता। अच्छा, इस समय जा। सोच-विचारकर तीसरे पहर आना।

जुलाहा और जुलाहिन दोनों पैलगी करके घर चले आये।

घर पहुँचकर जुलाहिन ने कहा—अब सुकुल दो हज़ार रुपये देता है। घर देने पर राज़ी क्यों नहीं हो जाते? जादा लोभ करने से शायद वही गति हो कि "दुबंधा में दोनों गये, माया मिली न राम।"

कल्लू ने कहा—बाबाजी तो कह गये हैं कि पाँच हज़ार रुपये मिलेंगे।

जुलाहिन ने कहा—पाँच हज़ार रुपये भला सुकुल देगा! इससे जो मिल रहा है, वही ले लो। हाथ में आई लछमी को न फेंको।

जुलाहे ने कहा—अरी पगली, पाँच हज़ार रुपये क्या सुकुल मुझको दे रहे हैं! वह तो पाँच पैसे देनेवाला भी नहीं—पाँच हज़ार की कौन कहे। यह रुपया भगवान् उसके द्वारा दे रहे हैं। संन्यासी बाबा तो कह गये हैं।

जुलाहिन ने चिन्तित होकर कहा—कहने को कह तो गये हैं, लेकिन वे देवता तो हैं ही नहीं, आदमी ही हैं। शायद अन्त तक उनका सब कहना सच न उतरे।

कल्लू ने जोश में आकर कहा—छी छी, ऐसी बात न कह सुक्खू की मा! वे साधु पुरुष थे—उनकी बात कहीं झूठ हो सकती है? उनकी बात पर सन्देह करना पाप है। मैं पाँच ही हज़ार रुपये पाऊँगा।

यही हुआ। सुकुल ने दूसरे दिन तीन हज़ार और तीसरे दिन चार हज़ार तक कह दिये। उस पर भी जब कल्लू न राज़ी हुआ तब उन्होंने उसे बुलवाकर कहा—कल्लू, क्या तुझे परलोक का डर नहीं है?

"क्यों दादा?"

"मैं इस तरह तेरी ख़ुशामद करता हूँ—इस जगह के लिए चार हज़ार रुपये तक देता हूँ तब भी तू राज़ी नहीं होता! महादेव बाबा ने मुझे सपना दिया है कि तेरे घर की यह जगह उन्हें बहुत प्यारी है। इस जगह पर अगर मैं उनका मन्दिर बनवा सकूँ तो उन्होंने मुझे ऐसा वर देने के लिए कहा कि फिर मेरे वंश में कभी किसी को कष्ट न मिलेगा; सभी राजा की तरह सुख से रहेंगे। इसी से मैं इतनी ख़ुशामद कर रहा हूँ। तू ज़मीन मुझे दे देगा तो मानो एक ब्राह्मण के वंश का सदा के लिए उपकार करेगा। और अगर न देगा तो तुझे ब्राह्मण को कुण्ठित करने का पाप लगेगा।"

कल्लू ने कुछ चुप रहकर कहा—आप चार हज़ार देते हैं?

"नगद चार हज़ार।"

"और वह घर भी ?"

"हाँ !"

"अच्छा दादा, जब आप इतना कह रहे हैं तब क्या करूँगा, देना ही पड़ेगा। लेकिन आपको हज़ार रुपये और देने पड़ेंगे। नगद पाँच हज़ार रुपये और वह घर।"

सुनकर सुकुल ने कल्लू की पीठ ठोंककर कहा—भला रे मेरे भैया ! कौन कहता है, जुलाहे के अक़िल नहीं होती ? अच्छा, मैं राज़ी हूँ। पाँच ही हज़ार सही। और वह मकान भी। अच्छा तो फिर आज ही कचहरी को चल दें। कल वहाँ पहुँचकर लिखा-पढ़ी हो जायगी।

"अच्छी बात है।"

दूसरे दिन सुकुल ने अदालत में नगद पाँच हज़ार रुपये कल्लू को देकर अपने नाम मकान लिखा लिया।

५

नया शास्त्र

गाँव आकर कल्लू अपनी मामूली गिरिस्ती और करघा दूसरे घर में उठा ले गया। संन्यासी से वादा किया था कि चार हज़ार रुपये लगाकर कारख़ाना खोलूँगा। एक सप्ताह तक वह इसी सोच में पड़ा रहा कि किस तरह कारख़ाना खोला जाय।

उसी दिन शाम को चबूतरे पर बैठा हुआ कल्लू हुक्का पी रहा था। इसी समय अच्छी पोशाक पहने एक युवक ने

आकर कहा—"वन्दे मातरम्।" वह कमीज के ऊपर छींट का कोट पहने था। कन्धे पर एक मैली रेशमी चादर थी। वह मोटी धोती और कानपुर टेनरी का बूट जूता पहने था।

कल्लू के हुक्के की गड़गड़ाहट बन्द हो गई। सन्नाटे में आकर वह उस आदमी की ओर ताकने लगा।

युवक ने कहा—क्यों भाई, पहचाना नहीं? पाँच हज़ार रुपये पाते ही भूल गये?

आवाज़ से पहचानकर कल्लू ने कहा—कौन संन्यासी बाबा?

युवक ने हँसकर कहा—हाँ, उस दिन तो मैं संन्यासी बाबा ही था—लेकिन आज नौजवान गृहस्थ हूँ। जब जैसा तब तैसा।

कल्लू ने अचरज से चौंधियाकर कहा—आइए आइए—ऊपर आइए। बैठिए।

युवक के बैठने पर कल्लू ने कहा—बाबा, आज ऐसा भेस क्यों कर रक्खा है?

युवक ने कहा—रोज़ का मेरा यही भेस है। उस दफ़ा गाँवों में स्वदेशी मन्त्र का प्रचार करने के लिए निकला था; इसी से संन्यासी का भेस रख लिया था।

कल्लू इस बात को अच्छी तरह समझ नहीं सका। संशय के साथ उसने कहा—आज किसलिए पधारे हैं?

युवक ने कहा—आज यह देखने आया हूँ कि तुम बुड्ढे सुकुल के रुपये लेकर क्या कर रहे हो। अभी तक तुमने

करघे-वरघे का कुछ इन्तज़ाम नहीं किया ? अब क्यों देर करते हो ? दीवाली के दिन आ रहे हैं। भगवान् की इच्छा से अब तेहवारों में लोग बहुत कम विदेशी कपड़े ख़रीदेंगे। बस, करघे चलाओ—करघे चलाओ। नहीं तो कैसे करघों की तरक्क़ी करोगे ? अबकी स्वदेशी की जयजयकार है।

"तो क्या आप संन्यासी नहीं हैं ?"

"नहीं जी, मैं क्यों संन्यासी होने लगा ?"

कल्लू का अचरज धीरे-धीरे बढ़ चला। उसने डरते-डरते कहा—अच्छा, अगर आप संन्यासी नहीं हैं तो मुझे पाँच हज़ार रुपये किस तरह आपने दिलाये ? मेरा वह घर तो सौ रुपये का भी न होगा—उसके लिए सुकुल ने मुझे पाँच हज़ार रुपये दे दिये। उसे आपने यह बुद्धि कैसे दी ?

युवक ज़ोर से हँसने लगा। उसने कहा—मैंने उसे यह बुद्धि नहीं दी। लोभ नाम का जो एक भूत है उसी ने सुकुल के सिर पर चढ़कर उसे यह बुद्धि दी थी।

कल्लू ने काँपकर कहा—भूत ?

युवक—डरो नहीं, डरो नहीं। रात को अँधेरे में सुन-सान मैदानों में जो भूत घूमते हैं—मिनमिनाकर बातें करते हैं—वे भूत नहीं। तुम रूपक नहीं समझ सकते। अच्छा, तो मैं ख़ुलासा ही कहता हूँ—सुनो। उस दिन तुम्हारी औरत एक सोने की तबिजिया बेच लाई थी; याद है ?

"याद है।"

"उसके भीतर एक भोजपत्र था—सराफ़ ने लौटा दिया था—तुम्हारी औरत ने वह मुझे देखने के लिए दिया था; याद है?"

"हाँ, उसने दिया था।"

"तुम्हारा दुख देखकर और यह सुनकर कि सुकुल ने इस तरह ठगकर तुम्हारा सर्वस्व हड़प कर लिया है, मैंने सोचा कि सुकुल को उसके काम की सज़ा देनी चाहिए। तुम्हारे सो जाने पर मैंने उस भोजपत्र को खोलकर देखा तो महावर से बहुत पुराने समय का लिखा हुआ कोई मन्त्र का अक्षर सा उसमें जान पड़ा। मैंने तब उस भोजपत्र में काली स्याही से लिख दिया "मेरे वंश में अगर कभी किसी को खाने-पीने की तङ्गी हो तो वह हमारे घर के ठाकुरद्वारे के उत्तर ओर खोदकर देखे, उस जगह सात घड़े मोहरों से भरे गड़े हैं।" यह लिखकर भोजपत्र लपेटकर मैंने सबेरे जाते समय दे दिया। जुलाहिन से जो उसके बारे में जाते समय मैंने कहा था सो तो तुमने अपने कानों से सुना ही था।

यह हाल सुनकर कल्लू एक मिनट तक काठ के पुतले की तरह सन्नाटे में खड़ा रहा। अन्त को बोला—सो भैया, यह काम तो कुछ अच्छा नहीं हुआ!

"क्यों, बुरा ही क्या हुआ?"

"बाम्हन का पैसा ठगना! यह महापाप है।"

युवक फिर हँसने लगा। बोला—'बाम्हन का पैसा' आया कहाँ से था? दुनिया के ग़रीब असहाय लोगों को

ठग-ठगकर उसने रुपये जमा किये थे—यह बात तुमने और तुम्हारी स्त्री ने ही कही है। वह रुपया उससे यों लेने में कुछ भी दोष नहीं है।

"भैया, मैंने सुना है, जो पाप करेगा उसे भगवान् सज़ा देंगे। सुकुल अगर औरों का सत्यानास करते हैं तो उसका विचार भगवान् करेंगे। तुम-हम उन्हें सज़ा देनेवाले कौन हैं?"

"भगवान् क्या अपने हाथ से कुछ करते हैं? मनुष्य के हाथों ही सब काम कराते हैं। जो दूसरों को सताकर, ठगकर, रुपये जमा करता है उसका धन हरने में कुछ पाप नहीं है। बल्कि उस रुपये को, उससे लेकर, अच्छे काम में लगाने से पुण्य होता है। यह इस युग का नया शास्त्र है।"

"भैया साहब, मैं वह कुछ तो जानता नहीं। एक दिन गाँव में कथा सुनने गया था। वहाँ सुना था कि जो कोई हिन्दू पराई चीज़ हर लेता है उसे बड़ा पाप लगता है—नरक जाना पड़ता है।"

युवक ने अधीर होकर कहा—नरक? डैम योर नरक। यह सब पुराना कुसंस्कार रहने दो। आज मुझे यहाँ बैठने की फ़ुरसत नहीं है। किसी दिन आकर ये सब बातें तुमको अच्छी तरह समझा दूँगा। अब जल्दी से कारख़ाना खोलने का प्रबन्ध करो। देर न करो। अबकी जिस दिन आऊँगा उस दिन मैं देखना चाहता हूँ कि ज़ोर-शोर से तुम्हारे कार-ख़ाने में करघे चल रहे हैं। और याद है? ठीक लागत

भर लेकर कपड़े बेचने पड़ेंगे। एक पैसा भी मुनाफ़ा न लेना। अब मैं जाता हूँ।

युवक उठ खड़ा हुआ।

कल्लू भी खड़ा हो गया। उसने काँपती हुई आवाज़ में कहा—भैया, मुझे माफ़ करो। मुझसे यह काम न होगा।

"क्या? बिना मुनाफ़ा लिये न बेचोगे? मुनाफ़ा लेने के वादे पर तो तुमको रुपये दिये नहीं गये।"

"मैं यह नहीं कहता। मैं करघे वग़ैरह न खड़े करूँगा। मैं ये रुपये मुकुल को फेर दूँगा।"

"अयँ! फेर दोगे?"

"जी हाँ।"

"सब रुपये?"

"सब रुपये। एक कौड़ी भी न रक्खूँगा।"

कल्लू का स्वर वज्र के समान दृढ़ था।

"तुमको इससे मिलेगा क्या? तुम्हारे बालबच्चे खायँगे क्या?"

कल्लू ने हँसकर कहा—उसके लिए क्या चिन्ता है भैया? जिन्होंने पैदा किया है वे खाने को न देंगे? पेड़ों के पत्ते खाऊँगा तो वह भी अच्छा; लेकिन अधरम की कौड़ी न लूँगा। देखिए, उस जलम में मैंने न-जाने कैसे पाप किये थे जो इस जलम में इतने कष्ट पा रहा हूँ। अब फिर इस

जलम में अगर बाम्हन का पैसा बेईमानी से लूँगा तो उस जलम में न-जाने कौन गति होगी !

क्रोध से काँपते हुए स्वर में, दाँत से दाँत किटकिटाकर, युवक ने चिल्लाकर कहा—फेर देगा ?

"हाँ भैया, कल सबेरे जाकर सब रुपये सुकुल को फेर दूँगा।"

"मूर्ख—नराधम—देशद्रोही" कहकर बूट-सहित पैर की ठोकर से कल्लू को ज़मीन में गिराकर वह युवक रात के अँधेरे में ग़ायब हो गया।

रसमयी की रसिकता

१

लाला रघुवरदयाल का व्याह हुए अठारह साल का ज़माना हुआ। यह सारा समय उन्हें स्त्री के साथ लड़ाई करते और फिर मनाते ही बीता है। ऐसी लड़ाका स्त्रियाँ बहुत कम देखने को मिलती हैं।

रघुवरदयाल की अवस्था इस समय चालीस बरस की होगी। उनकी स्त्री रसमयी की अवस्था भी तीस के लगभग होगी। 'रसमयी' नाम जिसने रक्खा था उसकी प्रतिभा की बलिहारी! लेकिन रस भी तो अनेक हैं न—यहाँ पर रौद्र या भयानक रस ही था।

रघुवरदयाल उर्दू पढ़े-लिखे मुख़्तार हैं। प्रयाग में रहकर मज़े में चार पैसे पैदा करते हैं। घर उनका प्रयाग में नहीं, ज़िले के एक गाँव में था। लेकिन कई साल से उन्होंने प्रयाग में ही अपना मकान बनवा लिया है।

दुःख की बात तो यह है कि अब तक रघुवरदयाल के कोई बाल-बच्चा नहीं हुआ। स्त्री की अवस्था ऐसी है कि अब आगे होने की कुछ आशा नहीं। बहुत दिनों से रघुवर-

दयाल की मौसी, बुआ आदि उनसे दूसरा ब्याह करने के लिए ख़ुशामद कर रही हैं। रघुवरदयाल की इच्छा भी यही है। लेकिन रसमयी के डर से अब तक इस बारे में वे कोई चेष्टा नहीं कर सके। साहस ही नहीं हुआ।

इसी बीच एक मामूली बात पर भयानक दुन्द मचाकर रसमयी ने ऐसा किया कि रघुवरदयाल दो दिन तक घर नहीं आये। अन्त को रसमयी ख़ुद अपने बाप के घर झूसी चली गई। रघुवरदयाल तब हिम्मत करके घर आये और प्रतिज्ञा की कि अब रसमयी का मुँह न देखूँगा—और जगह दूसरा ब्याह करूँगा। इस घर में रसमयी को अब घुसने भी न दूँगा। बस, अब सब हो गया।

२

झूसी प्रयाग के दूसरे किनारे पर बसी हुई है। बीच में गङ्गा-यमुना का सङ्गम है। झूसी में रसमयी का मैका है। उसके मा-बाप को मरे बहुत दिन हुए। इस समय उस घर में रसमयी की विधवा बड़ी बहन दुलारा और उसके दो छोटे भाई रहते हैं। रसमयी का बड़ा भाई जगन्नाथ प्रयाग स्टेशन पर नौकर है। छोटा भाई मनोहर स्कूल छोड़कर घर में ही बैठा हुआ है। उसे अभी कोई नौकरी नहीं मिली।

रसमयी को झूसी में रहते एक महीने से अधिक समय हुआ। पहले ऐसा होने पर दो-चार दिन—अधिक से अधिक

एक सप्ताह—के बाद रघुवरदयाल आकर हाज़िर होते थे और अनुनय-विनय करके स्त्री को घर ले जाते थे। किन्तु अबकी उस नियम के विरुद्ध होते देखकर रसमयी को कुछ चिन्ता हो आई।

महल्ले का एक लड़का नित्य पीपों के पुल से गङ्गा पार होकर दारागञ्ज के स्कूल में पढ़ने जाता था। उस लड़के ने आकर गाँव में यह ख़बर फैला दी कि रघुवरदयाल का ब्याह है—दिन भी ठीक हो गया है।

यह ख़बर पाकर रसमयी की बहन दुलारा एक दिन तीसरे पहर उस लड़के को अपने घर बुला लाई। उसे कुछ मिठाई खाने के लिए देकर कहा—भैया, मैंने सुना है कि हमारे रघुवर फिर ब्याह करनेवाले हैं। क्या यह सच है?

लड़के ने कहा—सच नहीं तो क्या। हमारे क्लास में एक लड़का चन्दी पढ़ता है। उसका मामा कटरे में रहता है। उसी की लड़की के साथ ब्याह पक्का हुआ है।

"ठीक जानते हो?"

"जानता नहीं तो क्या। चन्दी ने ही तो मुझसे कहा है। दिन तक ठीक हो गया है।"

"उसके मामा का नाम क्या है?"

"उसके मामा का नाम सरजूपसाद है। वे जजी कचहरी में काम करते हैं।"

"उनका घर तुम जानते हो भैया ?"

"जानता क्यों नहीं हूँ। चन्दो के साथ कई दफ़ा वहाँ गया हूँ।"

"लड़की कितनी बड़ी है ?"

"यही मेरी हमजोली होगी।"

लड़के की अवस्था तेरह वर्ष की होगी।

"वह लड़की देखने में कैसी है ?"

"बड़ी सुन्दर।"

दुलारा कुछ देर तक सोचती रही। फिर बोली—अच्छा, कल हम दोनों बहनों को उनके यहाँ ले चलोगे भैया ?

"क्यों ?"

"उनसे जाकर हाथ-पैर जोड़कर कहूँ-सुनूँगी कि यह ब्याह करने से मेरी बहन को दुख होगा और उनकी लड़की भी सुखी न हो सकेगी। कल ज़रा हमको ले चलो।"

"किस समय ?"

"यही खाने-पीने से छुट्टी करके।"

"मेरी स्कूल की हाज़िरी में न एक दिन घट जायगा ?"

"एक दिन के लिए मास्टर से छुट्टी ले लेना। मैं तुमको एक रुपया दूँगी—कनकव्वे और डोर ख़रीदना।"

लड़का जल्दी से राज़ी हो गया।

३

दूसरे दिन ग्यारह बजे के समय दोनों बहनों को साथ लेकर वह लड़का प्रयाग को चला। गङ्गा पार होकर एक गाड़ी करके वह कटरे में सरयूप्रसाद के घर पहुँचा। दरवाज़े के सामने जाकर गाड़ी रुक गई।

रसमयी ने कहा—यही घर है ?

"हाँ।"

"अच्छा तुम इसी गाड़ी के भीतर बैठे रहो; हम भीतर जाकर उन लोगों से मिल आवें।"

अब दोनों बहनें गाड़ी से उतरकर मकान के भीतर गईं।

उस घर की औरतों में कोई उस समय स्नान कर रही थी, कोई भोजन करने बैठी थी और कोई भोजन के बाद चबूतरे पर बैठी बाल सुखा रही थी। एकाएक दो भले घर की औरतों को भीतर आते देखकर एक स्त्री ने अचरज के साथ पूछा—तुम कौन हो जी ?

दुलारा ने कहा—हम लोग तुमसे मुलाक़ात करने झूसी से आई हैं।

स्त्री ने सन्देह के स्वर में कहा—आओ—बैठो।

दोनों बहनें बरामदे में जाकर बैठीं। दुलारा ने पूछा—घर की मालकिन कौन हैं ?

एक अधेड़ स्त्री को दिखाकर सबने कहा—यही हैं।

मालकिन ने पूछा—तुम बहन किसलिए आई हो ?

"तुम्हारी लड़की का ब्याह है?"

"हाँ, मेरी छोटी लड़की का ब्याह है।"

"कब ?"

"इस नवमी के बाद उस नवमी को।"

"लड़के का क्या नाम है ?"

"रघुवरदयाल—मुख़्तारी करते हैं।"

"सौत के ऊपर अपनी लड़की ब्याह रही हो।"

मालकिन को बात-बात में अचरज बढ़ रहा था। उन्होंने पूछा—क्या तुम उनको जानती हो ?

"जानती क्यों नहीं, ख़ूब जानती हूँ। हमारे ही गाँव में तो उनका पहला ब्याह हुआ है।"

"हाँ, सौत तो ज़रूर है। लेकिन उन्होंने उस स्त्री को छोड़ दिया है।"

रसमयी अब तक चुपचाप सब बातें सुन रही थी। उसका ग़ुस्सा धीरे-धीरे बढ़ता ही जाता था। मालकिन का यह जवाब सुनकर उसके हाथ-पैर ग़ुस्से से काँपने लगे—आँखें लाल हो आईं।

दुलारा ने पूछा—यह भी सुना है कि उन्होंने उस स्त्री को क्यों छोड़ दिया है ?

मालकिन—सुना है कि वह औरत बड़ी कर्कसा है।

यह सुनते ही रसमयी तड़ से शेरनी की तरह उठ खड़ी हुई। बरामदे के कोने में एक झाड़ू पड़ी थी। पलक मारते ही मारते रसमयी दोनों हाथों से वह झाड़ू पकड़कर मालकिन के ऊपर सपासप हाथ मारने लगी। उधर हाथ मारती जाती थी और इधर कहती जाती थी—क्यों?—क्यों?—और क्या मरने के लिए जगह नहीं मिली?—जगह नहीं मिली?—मेरे स्वामी के सिवा क्या कोई मर्द ही संसार में न था!—

ऐसी अभावनीय घटना से घर की औरतें दमभर के लिए तो हक्का-बक्का सी बन गईं। उसके बाद भारी गोलमाल मच गया। कमसिन लड़कियाँ रोती हुई भागकर पलँग के नीचे और सन्दूकों की आड़ में छिप रहीं। घर की महरी बर्तन माँज रही थी। वह बर्तन फेंककर "अरे ख़ून कर डाला, ख़ून कर डाला—सिपाही—ए सिपाही—ए पहरेवाले" कहती हुई सड़क पर निकल आई।

घर की और औरतों ने आकर रसमयी को पकड़ लिया। रसमयी तब मालकिन को छोड़कर उन पर जुट गई और घूसे-थप्पड़ और थूक की वर्षा करने लगी। किसी का कपड़ा फाड़ डाला, किसी के बाल नोच डाले, किसी के खोंचा मार दिया और किसी के काट खाया। रसमयी हाँफते-हाँफते कहने लगी—लड़की कहाँ गई? उसे ज़रा सामने लाओ न। उसकी आँखें फोड़कर, नाक काटकर, दाँत तोड़कर जाऊँगी।

पमयी झाड़ू पकड़ कर मालकिन के ऊपर सपासप
हाथ मारने लगी ।—पृ० १६२

दुलारा अब तक चुप खड़ी थी। उधर दरवाज़े पर लोग जमा हो गये। उनका शोर सुनकर उसने कहा—रसमयी, ठहर-ठहर। अब माफ़ कर बहन, इनको ख़ूब सज़ा मिल गई। चल, अब घर चल।

महरी दौड़ती हुई घर के भीतर आई और बोली—अजी इन्हें जाने न दो। मैं थाने में ख़बर कर आई हूँ, दारोगा साहब आ रहे हैं।

पुलिस का नाम सुनकर रसमयी ने कहा—चलो दीदी, चलो।

"जायगी कहाँ—दारोगा को आ लेने दे तब जाना।" कहकर दो-तीन औरतें रसमयी को पकड़ने के लिए आगे बढ़ीं।

रसमयी ने लपककर लोढ़ा उठा लिया और उसे तानकर बोली—ख़ून चढ़ा है—मुझ पर ख़ून चढ़ा है—सबकी जान लेकर फाँसी पर चढ़ूँगी।

यह देखकर सब औरतें "मैया रे" कहकर भीतर घुस रहीं और भीतर से किवाड़े बन्द कर लिये। "पहरेवाले—पहरेवाले असामी भागा जाता है" कहकर चिल्लाती हुई महरी फिर बाहर दौड़ी।

रसमयी तब बाहर निकलकर गाड़ी पर सवार हुई। दुलारा भी उसके साथ थी। गाड़ी चल दी।

४

कहना न होगा कि सरयूप्रसाद ने रघुवरदयाल के साथ अपनी बेटी का ब्याह नहीं किया। उनकी घरवाली ने कहा—वह ख़ूनी औरत है, ब्याह के बाद ज़रूर मेरी लड़की का ख़ून कर डालेगी। तुम और जगह ढूँढ़ो।

दूसरे दिन कचहरी में जाकर सरयूप्रसाद के मुँह से रघुवरदयाल ने सब हाल सुना। क्रोध से उनका शरीर जल उठा।

कचहरी से घर लौटकर, हाथ-मुँह धोकर, भीतर बैठे रघुवरदयाल तमाखू पी रहे थे, इसी समय आँधी की तरह रसमयी भीतर घुस आई। दो-तीन मिनट तक चुपचाप रघुवरदयाल की तरफ़ देखती रही—उसी दृष्टि से देखती रही जिससे पहले ऋषि-मुनि लोगों को भस्म कर देते थे।

रघुवरदयाल ने घबराकर कहा—क्यों ?

रसमयी ने बहुत ही सहूलियत के साथ कहा—एक श्राद्ध का सामान करने आई हूँ।

उसके ओठ क्रोध से फरकने लगे।

तमाखू पीते-पीते रघुवरदयाल ने कहा—किसका श्राद्ध ?

"सरजूपसाद की लड़की और उसकी मा का।"

"तो फिर दो श्राद्ध कहो। साथ ही अपने श्राद्ध का भी सामान न कर लो ?"

"वही होगा। सुना है, अब बुढ़ापे में ब्याह करने की सूझी है?"

हुक्का हटाकर ज़रा जोश के साथ रघुवरदयाल ने कहा—सूझी तो है। सूझे क्यों नहीं? क्या तेरा डर है?

रसमयी ने चिल्लाकर हाथ मटकाकर कहा—ब्याह करो न। ज़रा करके मज़ा तो देख लो।

"तू क्या करेगी?"

"कुछ अधिक नहीं। छुरी से लड़की की नाक काट डालूँगी और उसकी छाती पर दस मन का पत्थर दबा दूँगी।"

"और अगर कोई तुम्हारे नाक-कान काट डाले तो?"

"आओ न। काटो न। तुम्हीं काटो।"

रसमयी ने अपनी कमर पर दोनों हाथ रखकर, झुककर, अपना मुँह रघुवरदयाल के मुँह के पास बढ़ा दिया।

स्त्री की ऐसी नम्रता देखकर रघुवरदयाल फिर हुक्का उठाकर पीने लगे। झुके रहने से जब थकन मालूम पड़ी तब रसमयी मुँह हटाकर सीधी खड़ी हो गई। कहने लगी—तो फिर मैं छुरी पर सान रखकर धार ठीक कर रक्खूँगी। बात पक्की हो जाने पर खबर देना। चुपके-चुपके यह शुभ काम न कर लेना।

रघुवरदयाल ने कहा—तेरे मरे बिना दूसरा ब्याह नहीं करूँगा। तू कब मरेगी?

यह सुनकर रसमयी विद्रूप के स्वर में ज़ोर से हँसने लगी; बोली—पूछते हो, मैं कब मरूँगी? रसमयी अभी नहीं मरने की। उसके मरने में देर है। जब तुम्हारी व्याह करने की उमर निकल जायगी, आँखों से न सूझेगा, चलने न पाओगे, तब मैं मरूँगी।

औरत-मर्द की रसीली बातचीत यहीं तक हुई थी। इतने में बाहर एक्के के आकर ठहरने का शब्द सुनाई पड़ा।

रसमयी ने कहा—तो यही बात रहो। अब मैं जाती हूँ। दीदी यहाँ मौसी के घर आई थीं। मैंने सोचा, मैं भी चलकर दो-दो बातें कर लूँ।

रसमयी चल दी।

५

ऊपर लिखी बातचीत के बाद छः महीने बीत गये। रसमयी का घमण्ड पूरा नहीं हुआ। वह इस समय खाट पर पड़ी मौत की घड़ियाँ गिन रही है।

खबर पाकर रघुवरदयाल झूसी गये। दवा करने में कोई कसर नहीं रक्खी गई। किन्तु रसमयी की जान नहीं बची।

गंगातट पर ले जाकर रघुवरदयाल ने क्रिया-कर्म किया। संसार की ममता विचित्र है। इतना कष्ट देनेवाली स्त्री के लिए भी रघुवरदयाल की आँखों से आँसू गिरे।

और भी छः महीने बीते। रघुबरदयाल के साथी इष्टमित्र चारों ओर लड़की की खोज करने लगे। अन्त को पास ही फूलपुर में एक लड़की मिल गई। रघुबरदयाल ख़ुद जाकर किसी बहाने लड़की को देख आये। लड़की छरहरी और देखने में भी अच्छी थी। ख़ास कर लड़की का बाप वहाँ की रानी के यहाँ का मुख़्तार आम था। उधर के मामले-मुक़द्दमे भी रघुबरदयाल को ही मिलेंगे। कन्या के पिता लाला दुर्गादीन अँगरेज़ी-पढ़े-लिखे आदमी हैं।

ब्याह की बातचीत पक्की हो गई। वर के चाचा गाँव से आये हैं। कल तिलक चढ़ेगा। सबेरे आफ़िस के कमरे में मुख़्तार साहब बैठे हुए चार मवक्किलों से बातचीत कर रहे थे। उनके चाचा एक 'वेंकटेश्वरसमाचार' लिये हुए बैठे पढ़ रहे थे। तमाखू भी पीते जाते थे। इसी समय डाकिये ने आकर रघुबरदयाल को एक चिट्ठी दी।

लिफ़ाफ़े के ऊपर के अक्षरों पर नज़र पड़ते ही रघुबरदयाल को चक्कर सा आ गया। दो-चार बार आँखें मलकर बार-बार सिरनामे को जाँचने लगे। पास लाकर, दूर हटाकर तरह-तरह से देखा।

अन्त को काँपते हुए हाथों से लिफ़ाफ़ा खोला। पढ़कर उनका चेहरा उतर गया। मवक्किलों से कहा—अच्छा, इस समय तुम लोग जाओ। आज ज़रा सबेरे ही कचहरी जाऊँगा। वहीं बाक़ी बातचीत होगी।

मवक्किलों के चले जाने पर चाचा ने कहा—चिट्ठी आई है रघुवर ?

भर्राई हुई आवाज़ में रघुवरदयाल ने कहा—जी हाँ।

"कहाँ की चिट्ठी है ?"

"यही तो सोच रहा हूँ।"

रघुवर के चेहरे और आवाज़ के ऊपर लक्ष्य करके चाचा उठकर पास आ गये। उस समय रघुवरदयाल दुबारा उस चिट्ठी को पढ़ रहे थे। उनकी साँस रुक सी गई थी, मत्थे पर पसीने की बूँदें निकल आई थीं।

चाचा ने जल्दी से कहा—मामला क्या है ?—कोई बुरी ख़बर तो नहीं है ?

रघुवरदयाल ने चुपके से वह पत्र चाचा के हाथ में दे दिया। चाचा चिट्ठी लेकर चशमा खोजने लगे। दरवाज़े के पास खड़े होकर, चशमा लगाकर, वे पत्र पढ़ने लगे। मामूली पतले चिट्ठी के काग़ज़ के ऊपर बैंगनी स्याही से पत्र लिखा हुआ था। ऊपर न तो जगह का उल्लेख था न तारीख़ का। पत्र की नक़ल यह है—

श्री।

तुम्हारी मति मारी गई है। तुमने समझा कि रसमई मर गई, बला टली, अब ब्याह करूँ। मैं मर गई हूँ, लेकिन इतने ही से तुमको छुट्टी नहीं

मिल गई। घर के सामने जो बड़ा सा बरगद का पेड़ है उसी में आजकल मैं रहती हूँ। तुम कहाँ जाते हो, क्या करते हो, सो सब वहीं से बैठे-बैठे देखती हूँ। रात को पेड़ पर से उतरकर कभी-कभी तुम्हारे सोने के कमरे में जाती हूँ—पलँग के चारों ओर घूमती हूँ। कभी-कभी जी चाहता है कि तुमको भी गला दबाकर अपने साथ कर लूँ। यहाँ अकेले मेरा जी नहीं लगता। मेरा चेहरा इस समय बहुत ही ख़राब हो गया है। मेरे शरीर में मांस या चमड़ा कुछ नहीं है—केवल हाड़ ही हाड़ हैं। गङ्गा के किनारे तुमने मुझको जलाया था, इसी से मेरे हाड़ काले पड़ गये हैं। जो हो, अपने मुँह अपने रूप का बखान अच्छा नहीं मालूम पड़ता। ब्याह न करना, नहीं तुम्हारी बड़ी दुर्गति होगी।

रसमई।

पत्र पढ़कर चाचा का चेहरा भी काला पड़ गया। हरी ावाज़ में उन्होंने पूछा—यह लिखावट किसकी है, ानते हो?

"ख़ूब पहचानता हूँ। उसी के हाथ की लिखावट है।"

"और किसी ने जाल तो नहीं किया?"

"भगवान् जानें।"

चाचा पास रक्खी हुई कुर्सी पर बैठ गये। कुछ देर तक छत की धन्नियाँ देखते रहकर बोल उठे—जयराम—सीताराम—रामराघव—राम—राम—राम।

चाचा की यह हालत देखकर रघुबर को और भी डर लगा; कहा—अच्छा चाचाजी, भूत कहीं चिट्ठी लिखते हैं?

चाचा बोल उठे—भूत न कहो, भूत न कहो। देवजोनि कहो—उपदेवता कहो। जय राघव रामचन्द्र।

दोनों चुप रहे। अन्त को चाचा ने कहा—देखो, किसी की बदमाशी तो नहीं है? ऐसा भी क्या हो सकता है?—तरह-तरह के भूतों के—हरे हरे, देवजोनियों के—उपद्रव सुने हैं—लेकिन—ऐसा—तो कभी नहीं सुना। अच्छा, बहू के हाथ का लिखा पुराना काग़ज़ कोई पड़ा होगा? लाओ, मिलाकर देखो तो।

रघुबरदयाल ने कहा—पुरानी चिट्ठियाँ रक्खी हुई हैं।

जल्दी से भीतर जाकर रघुबरदयाल चार-पाँच चिट्ठियाँ उठा लाये।

चाचा ने चशमे के दोनों शीशे दामन से अच्छी तरह साफ़ कर लिये। पीछे चिट्ठियों को देखकर बड़ी सावधानी से अच्छर मिलाने लगे। अन्त को सब चिट्ठियाँ टेबिल पर फेंककर, लम्बी साँस लेकर बोले—"एक ही हाथ की लिखावट जान पड़ती है।" इसके बाद लिफ़ाफ़े को उलट-पुलटकर देखने लगे। पैसे के छः वाले साधारण लिफ़ाफ़े में चिट्ठी

गई थी। उस पर चार पैसे का टिकट लगा हुआ था। रघुवरदयाल के हाथ में वह लिफ़ाफ़ा देकर चाचा ने कहा—कहाँ की मोहर है, देखो तो।

रघुवरदयाल उर्दू-दाँ मुख्तार होने पर भी अँगरेज़ी के छापे के अक्षर पढ़ लेते थे। मोहर देखकर कहा—प्रयाग—दारागञ्ज की मोहर है। कल की तारीख़ है।

चाचा चुप बैठे रहे। बीच-बीच में केवल धीरे-धीरे "जय राम, श्रीराम, सीताराम" कहते जाते थे।

कचहरी जाने का समय देखकर रघुवरदयाल नहा-धोकर भोजन करने बैठे। रसोई-घर के बरामदे में जहाँ बैठे भोजन कर रहे थे वहाँ से उस बरगद के पेड़ की चोटी देख पड़ती थी। उस पेड़ की डाल एक दफ़ा खड़खड़ा उठी। रघुवरदयाल को किसी के हँसने का सा शब्द सुन पड़ा। उनसे भोजन नहीं किया गया। थाली छोड़कर उठ खड़े हुए। मुँह धोकर बाहर आये, कुछ देर तक उस बर्गद की ओर ताकते रहे। दो-तीन पक्षी आपस में लड़-भिड़ रहे थे। कुछ कौए ऊपर की डालों पर बैठे अपना जातीय सङ्गीत अलाप रहे थे। इसके सिवा और कुछ न देख पड़ा।

६

उसी दिन शाम को कमरे में बैठे हुए चाचा-भतीजे बात-चीत कर रहे थे। दिन को आज चाचा ने किवाड़ों में और

दीवाल पर तमाम 'राम-राम' लिख दिया है। आज दोनों जने एक ही पलँग पर लेटेंगे। तकिये के नीचे तुलसीकृत रामायण रक्खी जायगी और घर में रात भर दिया जलेगा। यह सब प्रबन्ध हो गया है।

रघुवरदयाल ने कहा—तो चाचाजी, क्या किया जाय? ब्याह रोक देना पड़ेगा?

"मैं तो इसकी कुछ ज़रूरत नहीं समझता।"

"अगर कोई उपद्रव उठ खड़ा हो?"

चाचा ने कुछ देर सोचा। फिर बोले—डर का कोई कारण नहीं देख पड़ता।

"यह जो लिखा है कि तुम्हारा गला दबा देने को जी चाहता है!"

"ना, ऐसा उससे न हो सकेगा। हज़ार हो, तुम उसके पति हो।"

"और यह जो उसने लिखा है कि ब्याह न करो। करोगे तो तुम्हारी बड़ी दुर्गति होगी।"

"बड़ी दुर्गति होगी, इसके माने यह नहीं भी हो सकते कि मैं तुम्हारी बड़ी दुर्गति करूँगी। इसके माने शायद ये हैं कि बुढ़ापे में ब्याह करने से तुम्हारी बड़ी दुर्गति होगी।"

रघुवरदयाल चुप रहे। मन में डर भी कम न था। और ब्याह करने की लालसा भी ज़ोरदार थी।

दूसरे दिन तिलक चढ़ गया। लेकिन चुड़ैल के भेजे ख़त की बात फैलते भी देर न लगी। धीरे-धीरे मुख़्तारआम साहब के कानों में भी यह भनक पड़ी। कहा ही जा चुका है कि वे अँगरेज़ी-पढ़े-लिखे आदमी थे। हाः-हाः करके हँस पड़े। बोले—चुड़ैल! इस बीसवीं सदी में भूत-चुड़ैल का विश्वास!

ब्याह का दिन निश्चित हो गया है। अब केवल पाँच दिन रह गये हैं। दोनों ओर सब तैयारी हो गई है। तीसरे पहर अपनी बैठक में रघुबरदयाल इष्टमित्रों के साथ बैठे थे। इनमें एक सरकारी वकील थे—नाम था नरायन बाबू। अवस्था चालीस के ऊपर होगी। आँखों पर सोने का चशमा लगा हुआ था। सिर पर घूँघरवाले छोटे-छोटे बाल थे। बड़ी-बड़ी मूछें और दाढ़ी थी। हाथ के नाख़ून बड़े-बड़े थे। मतलब यह कि वे थियोसफ़िस्ट थे। रघुबरदयाल के पास चुड़ैल का भेजा पत्र आने की ख़बर पाकर इन्होंने उनसे घनिष्ठता पैदा कर ली है। और एक नौजवान आदमी हैं। इनका नाम है विश्वनाथ। ये एल० ए० फ़ेल एक शिक्षित मुख़्तार हैं। बहुत से अँगरेज़ी के उपन्यास इन्होंने पढ़ डाले हैं।

विश्वनाथ ने कहा—रघुवर बाबू, एक बात और है। मैंने अनेक उपन्यास ऐसे पढ़े हैं जिनमें ऐसी दुर्घटना हो गई, जैसे रेल लड़ गई—नाव उलट गई—सबने समझा कि अमुक आदमी मर गया—चश्मदीद गवाहों की भी कमी नहीं है; लेकिन पुस्तक का अन्त देखने से जान पड़ा कि वह आदमी

जीता-जागता मौजूद है। इसी से मेरी समझ में आता है कि या तो आपकी स्त्री जीती हैं और या यह चिट्ठी जाली है। लेकिन आपको यह दृढ़ विश्वास है कि यह चिट्ठी आपकी स्त्री के ही हाथ की लिखी है, जाली नहीं। इस कारण यह विश्वास करने के सिवा और कोई उपाय नहीं कि आपकी स्त्री अभी तक जीती हैं। क्योंकि इस बीसवीं सदी में भूत-चुड़ैल के अस्तित्व पर किसी तरह विश्वास नहीं किया जा सकता।

यह सुनकर थियोसफ़िस्ट नरायन बाबू ने कहा—क्यों साहब, इस बीसवीं सदी में भूतों के अस्तित्व पर किसी तरह आप विश्वास नहीं कर सकते?

विश्वनाथ—इसलिए मैं विश्वास नहीं कर सकता कि मैंने भूत कभी नहीं देखा।

नरायन बाबू ने समझदारों की तरह हँसकर कहा—सम्राट् सप्तम एडवर्ड को तुमने कभी देखा है?

विश्वनाथ—जी नहीं।

नरायन—उनके होने पर आपको विश्वास है?

विश्वनाथ—हाँ, है। किन्तु उसका कारण यह है कि मेरे न देखने पर भी हज़ारों आदमियों ने उन्हें देखा है। उनकी दस-बीस तसवीरें भी देखी हैं। लेकिन आज तक मैंने यह बात किसी के मुँह से नहीं सुनी 'भूत या चुड़ैल को हमने अपनी आँखों देखा है'। सभी कह देते हैं 'हमने एक विश्वस्त आदमी से सुना है कि उसने भूत देखा है।'

नरायन बाबू ने अपनी लम्बी दाढ़ी के बालों में उँगली चलाते-चलाते कहा—आप कहते हैं कि सम्राट् को हज़ारों आदमियों ने देखा है। वैसे ही हज़ारों आदमियों ने अशरीरी आत्मा को भी देखा है। आप कहते हैं कि मैंने सम्राट् की दस-बीस तसवीरें देखी हैं। वैसे ही दस-बीस भूतों के चित्र भी मैं आपको दिखा सकता हूँ। यदि आप देखना चाहें तो एक दिन मेरे घर पर आइए। मेरी एक पुस्तक में केटी-किंग का चित्र है। प्रथम चार्ल्स के समय केटी-किंग नाम की एक लड़की जीवित थी। सोलह वर्ष की अवस्था में उसकी मृत्यु हो गई थी। गत शताब्दी के मध्य भाग में अमेरिका और यूरोप के अनेक स्थानों में कई 'सेयाँसे' में केटी-किंग स्थूल शरीर धारण करके प्रकट हुई थी। उसकी नब्ज़ की जाँच की गई, उसके शरीर में छुरी भोंककर देखा गया—ठीक आदमी की तरह उसके शरीर से रक्त-पात हुआ। उसका फ़ोटो तक लिया गया। फ़ोटो से छपा हुआ चित्र मेरी पुस्तक में है। आइएगा, दिखलाऊँगा।

विश्वनाथ ने मुसकाकर कहा—आप भी बड़े सीधे आदमी हैं! इन बातों पर आप विश्वास करते हैं? भूत का अस्तित्व सिद्ध करनेवालों की बहुत सी जालसाज़ियाँ पकड़ी जा चुकी हैं। आपने विश्वासयोग्य प्रमाण समझकर इस बात का उल्लेख किया कि केटी-किंग के शरीर में छुरी भोंकने से खून निकला। मुझे तो इसका फल उलटा जान पड़ता

है। अगर छुरी भोंकने से ख़ून न निकलता और एक आदमी की शकल सामने खड़ी रहती तो चाहे यह विश्वास किया जा सकता कि यह असल में आदमी नहीं, भूत है। इस मामले में भी देखिए। चुड़ैल लिखती है कि मैं सामनेवाले बर्गद के पेड़ पर हूँ। अगर वह चिट्ठी लिख सकती है तो सहज ही कोई रूप रखकर अपना वक्तव्य कह जा सकती थी। किन्तु ऐसा सहज काम न करके उसने काग़ज़, स्याही और क़लम जुटाने का कष्ट क्यों उठाया? फिर चिट्ठी टेबिल पर रख जाने से ही काम निकल जाता—मील भर डाकख़ाने जाने की क्या ज़रूरत थी? वैसा करने से टिकट के पैसे भी न खोजने पड़ते। साहब, अगर भूतों के राज्य में पैसा इतना सस्ता है तो, चलिए न, वहीं चलकर प्रैक्टिस शुरू करें।

नरायन बाबू ने ज़रा खीझ के साथ कहा—साहब, यह हँसी-दिल्लगी की बात नहीं है। ये गम्भीर विषय हैं। बहुत जानकारी और अनुशीलन के बिना ऐसी बातों पर राय देना ठीक नहीं। भूतों के यहाँ से चिट्ठी आने का यह पहला ही मौक़ा नहीं है। कुटुम्बीलाल नाम के एक महात्मा ने मैडम ब्लैवेट्स्की को इस तरह अनेक चिट्ठियाँ लिखी थीं। वे भी चाहते तो साक्षात् सामने आकर अपना वक्तव्य कह जाते, या चिट्ठी टेबिल के ऊपर रख जाते। लेकिन वे इसी तरह डाक से चिट्ठी भेजते थे।

यह सुनकर सुशिक्षित मुख़्तार विश्वनाथ बाबू धीरे-धीरे मुसकाने लगे। फिर बोले—कुटुम्बीलाल की चिट्ठियाँ तो,

बहुत दिन हुए, जाली साबित हो चुकी हैं। डाक्टर हजसन नामक एक वैज्ञानिक ने ख़ुद भारत में आकर इस बारे में जाँच करके साबित कर दिया है कि मैडम ब्लैवेट्स्की और दामोदर नामक एक आदमी ने मिलकर यह जाल रचा था।

इस पर थियोसफ़िस्ट नरायन बाबू ने भौंहें टेढ़ी करके खीझ के स्वर में कहा—उन डाह करनेवाले आदमियों की किताबें न पढ़िए। मेरे पास आइएगा, मैं आपको अच्छी-अच्छी किताबें पढ़ने के लिए दूँगा। मैडम ब्लैवेट्स्की का महत्त्व आपको उनकी 'आइसिस् आनवेल्ड' पुस्तक पढ़ने से मालूम होगा।

विश्वनाथ ने कहा—वह पुस्तक तो नहीं पढ़ी, हाँ एडमंड गैरेट की लिखी 'आइसिस् वेरी मच आनवेल्ड—आर—दि स्टोरी आफ़ दि ग्रेट महात्मा होक्स' पुस्तक पढ़ी है। लाइब्रेरी में है—अगर आप देखना चाहें तो ले आऊँ।

इस बात पर नरायन बाबू आग हो उठे। बोले—आप लोगों ने बस यही एक बात सीख रक्खी है! ऐसी कोई भी अच्छी चीज़ नहीं है जिसकी निन्दा न की जा सके। बदमाश लोगों ने वृथा ही मैडम को बदनाम किया है।

इसी समय बाहर डाकिये ने आवाज़ लगाई—"चिट्ठी ले जाइए।" डाकिया ख़ुद ही बैठक में आ गया और रघुवरदयाल के हाथ में एक चिट्ठी रख दी। उस पत्र को हाथ में लेते ही रघुवरदयाल का अजब हाल हो गया। बोले—साहब लीजिए, फिर वही चुड़ैल की चिट्ठी है।

पत्र निकालकर रघुवरदयाल ने पढ़कर वह चिट्ठी सबके सामने फेंक दी। थियोसफ़िस्ट बाबू ने बड़े आग्रह के साथ वह पत्र उठाकर पढ़ा; पढ़कर विश्वनाथ बाबू के हाथ में दे दिया। पत्र की नक़ल यह है—

श्री।

तुम्हारी इतनी हिम्मत! तिलक तक चढ़ गया! तुम समझे हो कि मेरा पहला पत्र 'बन्दूक़ की ख़ाली आवाज़' था। रसमई वैसी औरत नहीं। मेरे मना करने पर भी ब्याह करोगे। अभी तक कुछ नहीं बिगड़ा है, सँभल जाओ। यह कुमति छोड़ दो। नहीं तो एक दिन जब तुम आधीरात को सो रहे होगे, मैं बरगद के पेड़ से उतरकर तुम्हारी छाती पर दस मन का पत्थर दबा दूँगी। वह नींद फिर नहीं खुलेगी।

रसमई।

एक-एक करके सब ने उस पत्र को पढ़ा। पढ़कर सब सन्नाटे में आ गये। शिक्षित विश्वनाथ बाबू का भी मुँह सूख गया। तो भी उन्होंने मन से संशय को हटाकर कहा—अच्छा बाबू रघुवरदयाल, एक बार फिर अच्छी तरह लिखावट की जाँच कीजिए। आपकी स्त्री के हाथ की ही लिखावट है या किसी जगह पर कुछ सन्देह-जनक अन्तर है?

रघुवरदयाल ने कहा—कोई सन्देह नहीं। केवल हाथ की लिखावट ही मिलती तो मैं शायद सन्देह करता। वह लिखने में जो ग़लतियाँ करती थी वे भी मौजूद हैं। जैसे रसमई। इसके सिवा चिट्ठी में वे सभी बातें मौजूद हैं जिन्हें वह ज़िन्दगी में भी कहा करती थी।

सब लोग सन्नाटे में बैठे रहे। कुछ देर बाद गला साफ़ करके नरायन बाबू ने पूछा—उसके मरने के समय आप मौजूद थे?

रघुवर—हाँ साहब।

नरायन—साथ ही साथ घाट गये थे?

रघुवर—ज़रूर।

नरायन—चिता के ऊपर उसकी लाश रखने के समय उसका मुख आपने देखा था?

रघुवर—देखा क्यों नहीं? मैंने ही तो 'मुखाग्नि' दी थी। अजी तुम जो समझते हो वह बात नहीं है। कुछ भी भूल नहीं हुई।

विश्वनाथ बाबू गर्दन झुकाये बैठे थे।

एक आदमी ने कहा—"There are more things in heaven and earth, Horatio, Than are dreamt of in your philosophy." (ऐ होरेशिओ, स्वर्ग और मनुष्य-लोक में ऐसी अनेक चीज़ें हैं जिनको तुम्हारा दर्शनविज्ञान स्वप्न में भी नहीं जान सकता।)

दूसरे एक आदमी ने कहा—यह तो है ही। जैसे, हमारे देश में—केवल हमारे ही देश में क्यों—सभी देशों मे आदि काल से जो यह विश्वास प्रचलित है कि भूत नाम की एक चीज़ है, सो इसकी क्या कुछ जड़ ही नहीं है?

सर्कारी वकील नरायन बाबू ने कहा—यह निरा अन्ध-विश्वास नहीं है। गत पचास वर्षों में, यूरप और अमेरिका मे, भूत का अस्तित्व निःसन्देह रूप से प्रमाणित हो गया है। एक बार श्रेष्ठ वैज्ञानिक टिण्डल तक ने भूत की बात को हँसकर उड़ा दिया था। लेकिन अब शिक्षित समाज में वह भाव नहीं है। विख्यात लेखक स्टेड साहब ने अपने एक ग्रन्थ में लिखा है—"Of all the vulgar superstitions of the half-educated, nonedies harder than the absurd delusion that there are no such things as ghosts." अर्धशिक्षित लोगों के मन में जितने इतर जनोचित कुसंस्कार हैं, उनमें 'भूत नहीं हैं' यह अद्भुत भ्रम ही सबसे प्रबल है।

इतना कहकर नरायन बाबू विजयी वीर की तरह विश्वनाथ की ओर देखने लगे।

शाम हो गई थी। बैठक बर्ख़ास्त हो गई। उस बर्गद के नीचे से जाते समय विश्वनाथ के भी रोएँ खड़े हो आये।

७

चाचा कहीं घूमने गये थे। शाम के बाद घर लौटने पर, दूसरी चिट्ठी के आने की बात सुनकर, उन्होंने कहा—देखो

रघुवर, मामला धीरे-धीरे बेढब होता जाता है। न हो ब्याह को अभी रोक ही दो। मेरी राय है, साल पूरा होने पर गया में जाकर एक पिण्ड दे आओ—उसका उद्धार हो जायगा। साल पूरा होने में तो अब अधिक विलम्ब नहीं है, और एक महीने की देर होगी। तब फिर बेखटके यह शुभ काम पूरा किया जायगा।

रघुवर ने कहा—अच्छी बात है; यही निश्चय रहा।

कन्या के पिता से कह-सुनकर ब्याह का मुहूर्त महीने भर के लिए टाल दिया गया। जहाँ-जहाँ न्यौता गया था वहाँ-वहाँ चिट्ठी लिखकर भेज दी गई। यह बात सब जान गये कि रघुवरदयाल पहले स्त्री की गया करके फिर ब्याह करेंगे।

रघुवरदयाल के हाथ में आजकल एक बड़ा भारी जाल का मुक़द्दमा आ गया है। मुक़द्दमा दौरा-सुपुर्द हो गया है। उसके ख़तम हुए बिना वे गया करने नहीं जा सकते। फ़र्यादी के गवाहों को दिन भर रघुवरदयाल तालीम दिया करते हैं।

मुक़द्दमे की पेशी के पहले दिन शाम को कचहरी से लौटते समय 'रसमयी' का तीसरा पत्र रघुवरदयाल को मिला। उसमें और-और बातों के बाद लिखा है—

> "सुना है, गया में मुझे पिण्ड देने जा रहे हो। समझते हो कि पिण्ड देने से मेरा उद्धार हो जायगा और तब तुम मज़े से दूसरी शादी कर लोगे। अगर गया जाओगे तो मैं चोर का रूप

रखकर रेलगाड़ी में ही तुम्हारा काम तमाम कर दूँगी।"

रघुवरदयाल घर नहीं गये। वैसे ही नरायन बाबू के घर जाकर उनको पत्र दिखलाया।

पत्र पढ़कर नरायन बाबू ने कहा—यह तो बड़ी विपत्ति देख पड़ती है। आपको ब्याह करने का इरादा छोड़ ही देना पड़ेगा।

रघुवरदयाल—अच्छा साहब, अशरीरी आत्मा क्या आदमी की जान ले सकती है? आपकी थियोसफ़ी इस बारे में क्या कहती है?

नरायन बाबू ने आलमारी से एक मोटी किताब निकाली और उसका एक स्थान खोलकर कहने लगे—इस सम्बन्ध में थियोसफ़ी का यह मत है कि मुक्त आत्माओं के साधारणत: शरीर नहीं होता। किन्तु कभी-कभी वे अपने को मेटीरियलाइज़ अर्थात् स्थूल-शरीर-धारी बना लेती हैं। उनमें ऐसी शक्ति है कि वे वायु से—पेड़ों से—ज़मीन से—यहाँ तक कि आसपास के मनुष्यों के शरीर तक से आवश्यक चीज़ों का संग्रह करके देह-धारण कर लेती हैं। अतएव, उस अवस्था में किसी को मार डालना भी कोई आश्चर्य की बात नहीं। और यह भी तो सोचिए, जो हाथ क़लम पकड़कर चिट्ठी लिख सकता है वह क्या किसी तरह का वार नहीं कर सकता?

रघुवरदयाल ने कुछ देर सोचा। फिर बोले—देखिए, ये पत्र जाली हैं या नहीं, इसकी जाँच एक बार अच्छी तरह

करनी चाहिए। हस्तलिपि-विज्ञान के विद्वान् साहब को ये चिट्ठियाँ दिखलाकर जाँच न करवा ली जाय ?

थियोसफ़िस्ट बाबू ने रघुवरदयाल के ऐसे सन्देह से मन ही मन खीझकर प्रकट में कहा—सो—अगर इच्छा हो तो आप जाँच करा सकते हैं।

दूसरे दिन दौरे के मुक़द्दमे में गवाही देने के लिए हस्त-लिपि के पण्डित डाक्टर मार्शल कचहरी आये। वहीं रघुवर-दयाल ने साहब को 'रसमई' के तीनों पत्र दिये। जाँच के लिए रसमयी के तीन-चार पुराने पत्र भी ले गये थे। साहब ने कहा—कल सवेरे इसका नतीजा तुमको मालूम होगा।

दूसरे दिन सवेरे सरकारी वकील नरायन बाबू को साथ लेकर रघुवरदयाल साहब के बँगले पर पहुँचे। साहब ने कहा—ये सब पत्र एक ही आदमी के हाथ के लिखे हैं।

रघुवरदयाल का चेहरा छोटा सा हो गया। नरायन बाबू ने कहा—साहब, दया करके एक सार्टीफ़िकेट आप लिख दे सकते हैं ?

साहब ने सोचा, ज़रूर इन पत्रों के ऊपर कोई मुक़द्दमा चलाया जायगा। फिर गवाही देनी पड़ेगी और उसकी भली चङ्गी फ़ीस मिलेगी। उन्होंने बड़ी ख़ुशी से सार्टीफ़िकेट लिख दिया।

घर जाते समय नरायन बाबू ने रघुवरदयाल से कहा—इन चिट्ठियों की नक़ल और साहब का सार्टीफ़िकेट अगर मैं

अपने लोगों के "थियोसफ़िकेल-रिव्यू" में छपने के लिए भेजूँ तो क्या उसमें आपको कोई आपत्ति होगी ? हम जिसे 'स्पिरिट-राइटिंग' कहते हैं उसका सुन्दर अकाट्य प्रमाण हो जायगा।

रघुवरदयाल ने कहा—मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

"थियोसफ़िकेल-रिव्यू" की दूसरी संख्या में सार्टीफ़िकेट सहित सब चिट्ठियों की नक़ल छप गई। अनेक स्थानों से थियोसफ़िस्ट लोग रघुवरदयाल के पास चिट्ठियाँ भेजने लगे। कोई-कोई प्रयाग आकर अपनी आँखों से उन पत्रों को देख-कर चकराने लगे।

८

थियोसफ़िस्ट लोगों में रघुवरदयाल की बेहद प्रतिष्ठा है। प्रायः सभी थियोसफ़िस्ट रघुवरदयाल के नाम को जान गये। लेकिन इससे उनके मन का समझौता ज़रा भी न हुआ। अगर पत्र जाली साबित होते तो वे फिर ब्याह करके सुखी हो सकते थे। डर के मारे गया में जाकर पिण्डदान भी नहीं कर सके। शायद अब उनके भाग्य में ब्याह करना नहीं बदा है।

चैत का महीना आ गया। वसन्त की हवा डोलने लगी। कचहरी में 'शब्बरात' की छुट्टी थी। रघुवरदयाल घर बैठे अपनी बदनसीबी पर झीख रहे थे। इसी समय एक आदमी ने ख़बर दी कि झूसी में उनकी ससुराल में बड़ी मुसीबत आ

पड़ी है। "आतशबाज़ी का गोला छुड़ाने में तुम्हारे छोटे साले के बहुत चोट आई है। वह इलाहाबाद के बड़े अस्पताल में भेजा गया है।"

अब रघुवरदयाल से नहीं रहा गया। किराये की गाड़ी पर अस्पताल पहुँचे। वहाँ जाकर देखा—लड़के के बड़ी चोट आई है—जान-जोखों का मामला है। बिछौने के नीचे बैठी हुई विधवा दुलारा रो रही है। रघुवरदयाल को देखकर वह और भी रोने लगी।

दिन भर दवा देना और सेवा करना जारी रहा। शाम को डाक्टरों ने कहा—अब कुछ चिन्ता नहीं।

रघुवरदयाल ने साली से कहा—अब शाम हुई, घर चलो।

दुलारा ने कहा—मैं भाई को छोड़कर घर न जा सकूँगी।

"दिन भर हो गया, तुमने नहाया-खाया कुछ भी नहीं।"

"इससे क्या होता है। मैं घर न जाऊँगी।"

हालत देखकर अस्पताल के डाक्टरों ने कहा—आपको घर जाना ही होगा। यहाँ तो आप रात को रहने न पावेंगी। कल सबेरे फिर आइएगा। अब कोई डर नहीं। मुशकिल कट गई। हम लोग देख-भाल कर लेंगे। आप कुछ चिन्ता न करें। घर जायँ।

समझाने-बुझाने पर दुलारा राज़ी हुई। रघुवरदयाल से कहा—तो तुम मुझे झूसी ले चलो। रात को वहीं रहूँगी। सबेरे फिर मुझे यहाँ भेज देना।

रघुवरदयाल ने वही किया। भूसी में रात बीती।

सवेरे उठकर अपने हाथ से चिलम भरकर रघुवरदयाल ने हुक्का पीना शुरू किया था। इसी समय घर के बाहर बड़ा गोलमाल सुनाई पड़ा। जल्दी से हुक्का रखकर बाहर जाकर रघुवरदयाल ने देखा, चारों ओर से लाल पगड़ीवालों ने घेरा डाल रक्खा है। घोड़े के ऊपर ख़ुद पुलिस के सुपरिन्टेन्डेन्ट साहब दर्वाज़े पर खड़े हैं। साथ में कई दारोग़ा और हेड्कान्स्टेबिल भी हैं।

पुलिस के बड़े साहब रघुवरदयाल को पहचानते थे। रघुवरदयाल ने झुककर साहब को सलाम किया।

साहब ने मुँह में चुरुट दबाये-दबाये कहा—हेलो मुख़्टियार, टुम यहाँ क्या करटे हो?

"हुज़ूर, यह मेरी सुसराल है।"

"यह टुमारा सुसराल है? अच्छी बाट, हम टुम्हारे सुसराल को सर्च करेगा।"

"क्यों हुज़ूर?"

"यहाँ 'बम' टैयार होटा है या नहीं—डेखूँगा। यह सर्चवारंट है।—"

साहब ने रघुवरदयाल के हाथ में वारंट दे दिया।

रघुवरदयाल ने उसे उलट-पलटकर देखा, फिर साहब को लौटा दिया; कहा—हुज़ूर मालिक हैं, जो चाहें कर सकते हैं।

"औरतों को पर्दे में बेज दो।"

पुलिस घर के भीतर घुसी। स्त्रियों में केवल दुलारा थी। उसने पुलिस के डर से कहीं छिपने की कुछ ज़रूरत नहीं समझी। तुलसी की माला हाथ में लेकर तुलसी-चौरे के पास बैठकर 'रामराम' जपने लगी।

तलाशी शुरू हुई। बन्दूक़, बारूद, डिनामाइट, बम, वर्त्तमान रणनीति, युगान्तर, गीता, देश की बात, रिव्यू आफ रिव्यूज़ आदि कोई सामान नहीं निकला। निकला क्या, हिन्दूतीर्थदर्शन, काशी का नक्शा, जंत्री, तुलसीदास की रामायण और कुछ काशी के आने-दो आनेवाले रद्दी उपन्यास। छोटे या बड़े किसी देशी लीडर की तसवीर भी नहीं मिली। निकला क्या, पैसे-पैसेवाली काली, गङ्गा, गणेश और लक्ष्मी की क़लमी तसवीरें। एक पोटली पुराने काग़ज़ात की और एक मैली पुरानी चिट्ठियों का फ़ाइल भी मिला। दुलारा के बक्स से एक चिट्ठियों का बण्डल और कुछ ऐसे लिफ़ाफ़े भी निकले जिन पर पता लिखा हुआ था।

सब चीज़ें चबूतरे पर लाकर ढेर की गईं। एक दारोग़ा चीज़ों की फ़ेहरिस्त तैयार करने लगा। रघुवरदयाल भी वहीं बैठे थे। उन्होंने देखा, तमाम सादे लिफ़ाफ़ों पर उन्हीं का पता लिखा है और अक्षर हैं रसमयी के। पुलिस साहब की अनुमति लेकर लिफ़ाफ़ों और चिट्ठियों को रघुवरदयाल जाँचने लगे। बीस के लगभग चिट्ठियाँ थीं। सब बैंगनी

स्याही से रसमयी की लिखी हुई थीं। कई चिट्ठियाँ खोलकर रघुवरदयाल ने पढ़ीं भी। अनेक दशाओं की कल्पना करके अन्दाज़ से चिट्ठियाँ लिखी गई थीं। किसी-किसी में 'बर्गद पर रहने' का भी उल्लेख है। एक में लिखा है—"यह न समझना कि गया में पिण्डदान कर आया हूँ। मैं इस समय भी तुमको सता सकती हूँ—तुम्हारी गर्दन मरोड़ सकती हूँ"। एक में लिखा है—"सुना, ब्याह का दिन पक्का हो गया है, अब भी सावधान हो जाओ।" एक में लिखा है—"कल तुम्हारा ब्याह है। इतना मना किया, फिर भी न सुना। अच्छा, रहने के घर में आग लगाकर तुमको और तुम्हारी स्त्री को जला दूँगी।" इत्यादि।

सब मामला, दिन के उजाले की तरह, रघुवरदयाल की समझ में साफ़-साफ़ आ गया।

दुलारा तुलसीचौरे पर बैठी सब देख रही थी। रघुवरदयाल ने कहा—क्योंजी यह सब क्या है?

दुलारा मौज में माला सटकाती रही।

मातृहीन

१

जिस दिन यह ख़बर निकली कि मैं सिविल सर्विस की परीक्षा में दुबारा भी 'पास' नहीं हुआ उस दिन मुझे कुछ रञ्ज नहीं हुआ, यह मैं नहीं कह सकता। लेकिन मुझे पहले ही से निश्चय था कि परीक्षा में पास हुए लोगों की फ़ेहरिस्त मे शिवनन्दनसहाय का नाम न छपेगा। इसका कारण यही था कि साल भर खेल-तमाशे आदि अनेक भारी कामों में बराबर लगे रहने के कारण पाठ याद करने को बिल्कुल समय न मिलता था। पास न हो सकूँगा, यह धारणा परीक्षा के पहले ही से मुझको थी, परीक्षा दे आने पर उस मत को बदलने की मैंने कोई ज़रूरत नहीं समझी।

फ़ेल होकर सिर झुकाये मैं अपने बेज़्वाटर के डेरे में लौट आया। उस समय नवम्बर का महीना था। दिन भर सूर्य का मुँह देखने को नहीं मिला। बीच-बीच में पानी भी बरस जाता था। भीतर और बाहर के अँधेरे में मानों मेरा दम घुटने लगा। मेरे डेरे के पास ही "दि आर्टेजियन्" नाम की एक दूकान थी। वहाँ मन के अँधेरे की दवा

बिकती थी। लैंडलेडी को बुलाकर मैंने उस दवा की एक बोतल मँगाई। सोडावाटर का अनुपान देकर उसकी कई मात्राएँ पीं। उसके पीते ही मेरे मन का सारा अँधेरा दूर हो गया। उस अँधेरे के बदले मुझे नवोदित सूर्य का प्रकाश देख पड़ा। मैंने सोचा, ओह, भाग्यों से फ़ेल हो गया! नहीं तो बैरिस्टरी की परीक्षा देने की सुबुद्धि न होती। एक साल मेहनत करके सब परीक्षाएँ पास कर लूँगा—टर्म तो कम्प्लीट ही कर रक्खा है। बैरिस्टरी पास करके बहुत सा रुपया कमाना मेरे भाग्य में लिखा है; विधाता के लिखे को कौन मेट सकता है? मेरे पिता ने बैरिस्टरी पास करके बहुत सा रुपया कमाया था। साफ़ देख पड़ता है कि मैं भी 'बाप का बेटा' होऊँगा।

मेरे साथ परीक्षा देकर जो लोग "पास" हो गये थे उनके लिए मन में दुःख भी हुआ। मैंने सोचा, बेचारे जन्म भर मेहनत करके भी महीने में दो-तीन हज़ार रुपये से अधिक न पैदा कर सकेंगे। और दस बरस के बाद हाईकोर्ट के प्रसिद्ध बैरिस्टर, मवक्किलों के हुजूर, मिस्टर शिवनन्दन-सहाय?—दस बरस बीत गये—किन्तु मवक्किलों के उस दुर्लभ रत्न का पता पाने का कोई लक्षण नहीं देख पड़ता।

ख़ैर, उस बात को जाने दीजिए। मैं अपनी वर्तमान दशा का वर्णन करने नहीं बैठा हूँ। उस समय विलायत में जो कुछ हुआ उसी का वर्णन करने के लिए मैंने इस समय

क़लम उठाई है। आशा और आनन्द से प्रफुल्लित होकर सन्ध्या के बाद सजधजकर मैं थियेटर देखने चला गया। मेरे साथ और कोई नहीं था।

शेक्सपियर के लिखे एक ऐतिहासिक नाटक का अभिनय हुआ। अभिनय देखकर मैं बहुत ही मुग्ध हो गया। रात के बारह बजे डेरे पर आकर पूर्वोक्त दवा की और दो-एक मात्राओं का सेवन करके मैं सोने की तैयारी करने लगा। शेक्सपियर के नाटक के कवित्व और सौन्दर्य की मन ही मन आलोचना करने में मात्रा बढ़ गई। तब मैंने सोचा, कैसे खेद की बात है कि हिन्दुस्तान में एक भी शेक्सपियर नहीं। मैं चाहूँ तो क्या भारत का एक शेक्सपियर नहीं हो सकता? क्यों नहीं हो सकता? जब मैं हिन्दुस्तान में था तब कभी-कभी "हिन्दुस्तानी" में मेरी कविता छपा करती थी। उस समय मेरे मित्रों ने भविष्यद्वाणी की थी कि मैं किसी समय उत्तम कवि हो जाऊँगा। मैं इस बात का स्पष्ट अनुभव करने लगा कि मेरे भीतर प्रतिभा की चिनगारी मौजूद है। इस बारे में मुझे सन्देह नहीं रहा कि मैं ही भारत का भावी शेक्सपियर हूँ। मैंने सोचा, कल ही एक ऐतिहासिक नाटक लिखना शुरू कर दूँगा। "रचिहौं रचना रुचि सों, सब ही सुख पाइहैं हेरि कै जाहि हिये।" इस पद्यांश को धीरे-धीरे बार-बार कहने लगा। इसके बाद उठकर सोने चला गया।

२

दूसरे दिन नव बजे के समय उठकर देखा, पाला गिर रहा है। जल्दी से सबेरे का भोजन करके बड़े उत्साह से उसी पाले में घर से बाहर चल दिया। गाड़ी पर चढ़कर ब्रिटिश-म्यूज़ियम में पहुँचा। एक शिलिङ्ग में एक सुन्दर जिल्दबँधी सादी कापी ख़रीदकर म्यूज़ियम के पाठभवन (Reading Room) में गया। इसी कापी पर भारत के शेक्सपियर की सबसे पहली रचना स्थान पावेगी।

ब्रिटिश-म्यूज़ियम का यह रीडिंग रूम जगत् का आठवाँ आश्चर्य कहलाने लायक़ है। सब समय की—सब जातियों की सब विद्याएँ यहाँ एकत्रित हैं। इस महान् पाठ-भवन का निचला हिस्सा एक घेरे के समान गोल है। बीच में कुछ जगह कर्म्मचारियों के बैठने के लिए है। उसी स्थान में गोल आकार की तीन आलमारियाँ हैं। उनमें पुस्तक-सूचियाँ रक्खी हुई हैं। एक सूचीपत्र एक हज़ार से अधिक भागों में पूरा होता है। यह फ़ेहरिस्त अकारादि क्रम से—ग्रन्थ-कारों के नाम और विषय के अनुसार—बनाई गई है। इसके बाद अर्धचन्द्राकार बहुत से टेबिल रक्खे हुए हैं। हर एक टेबिल पर कई पाठक बैठकर पढ़ सकते हैं। उनमें अलग-अलग नम्बर पड़े हुए हैं।

यह पाठभवन सबेरे आठ बजे से शाम के आठ बजे तक खुला रहता है। भीतर जाकर देखा, उस समय भी बहुत

से पाठक नहीं आये थे। मैंने कुर्सी पर बैठकर, सूची हाथ में लेकर, राजपूत-इतिहास के दो ग्रन्थों के नाम लिखकर दिये। दस मिनट के बाद एक कर्म्मचारी ने दोनों पुस्तकें लाकर मेरे हाथ में रख दीं।

उन इतिहासों को लेकर मैं अपनी रचना का विषय खोजने लगा। नायक बनाने के लिए एक राजा की ज़रूरत है। वह राजा ऐसा होना चाहिए जिसने थोड़ी सेना से दो-एक प्रसिद्ध युद्धों में जय पाई हो। वह युद्ध चाहे देश के लिए हुआ हो और चाहे अपनी सम्पत्ति की रक्षा के लिए। इसके लिए कुछ चिन्ता नहीं। मैं युद्ध के समय उसके मुँह से देश-भक्ति के ऊपर लेक्चर दिलवा दूँगा। राजा की अपेक्षा राजपुत्र हो तो और भी अच्छी बात है। क्योंकि राजा प्रायः क्वारे नहीं मिलते। राजा को प्रेम में फँसाने का सुयोग बहुत कम मिलता है। नायक की प्रेमिका का नाम मधुर और कोमल होना चाहिए। अगर नाम मुलायम हो तो वह गाने-बजाने में होशियार या घोड़े की सवारी में निपुण न हो तो भी कुछ हानि नहीं। मैं उसकी उस कमी को दूर कर देने का ज़िम्मा ले सकता हूँ।

एक घण्टे से अधिक समय तक निष्फल अनुसन्धान करने के बाद मैंने देखा कि एक बुड्ढी अँगरेज़ लेडी, जिसके सब बाल सफ़ेद हो गये हैं, धीरे-धीरे पैर रखती हुई पाठागार में आ रही है। उसके हाथ में काले चमड़े का एक 'केस'

या आधार लटक रहा है। ऐसे आधार में चित्रकार लोग चित्र खींचने का सब सामान रक्खा करते हैं। मैं जहाँ पर बैठा था उसी ओर वह लेडी आने लगी। मेरे पास आकर, मेरे चेहरे की तरफ़ देखकर, वह मानो चौंककर खड़ी हो गई। फिर तुरन्त ही अपने को सँभालकर, धीरे-धीरे वहाँ से चलकर, मेरी कुर्सी से चार-पाँच कुर्सियों के अन्तर पर वह लेडी बैठ गई।

मैंने सोचा, बुढ़िया की नज़र कमज़ोर है। पहले किसी परिचित आदमी का उसे धोखा हो गया होगा। यह मामूली घटना बहुत देर तक मेरे हृदय में स्थान न पा सकी। मैं फिर इतिहास के जङ्गल में नायक का शिकार करने लगा। इसी तरह और भी कुछ समय बीता। मन के माफ़िक़ नायक का पता न लगने से मैं और दो पुस्तकों की खोज में उठकर चला। उस महिला के पास ही होकर जाना था। जाते समय मैंने देखा, उसके सामने दो-तीन हिन्दुस्तानी चित्रों की पुस्तकें खुली रक्खी हैं और वह काग़ज़ पर पेन्सिल से एक जङ्गल का दृश्य खींच रही है। लौटते समय उधर से आया तो देखा, उस जङ्गल के भीतर एक बाघ बैठा हुआ है और हाथी की पीठ पर से सैनिक वेशधारी एक अँगरेज़ उस बाघ को अपनी बन्दूक़ का निशाना बना रहा है।

धीरे-धीरे एक बज गया। लञ्च का समय आ गया। पुस्तक को उसके स्थान पर रखकर मैं बाहर गया। थोड़ी दूर

पर वियेना रेस्टोराँ नाम का होटल था। वहाँ जाकर भोजन करने बैठा।

दो-एक मिनट के बाद देखा, वह लेडी भी उस होटल में दाखिल हुई और मेरे ही टेबिल के सामने की कुर्सी पर बैठ गई। मेरी तरफ़ देखकर मुसकाते हुए उसने कहा—Good afternoon—आप अभी ब्रिटिश म्यूज़ियम के रीडिंग-रूम में थे न?

मैंने भी उसको सलाम करके कहा—मैं आपकी कुर्सी से थोड़ी ही दूर पर बैठा था।

"क्षमा कीजिएगा। आप क्या हिन्दुस्तान से आये हैं?"

"जी हाँ। मैं ब्राह्मण हूँ।"

"किस जगह के रहनेवाले हैं?"

"घर तो मेरा सेन्ट्रल-प्राविन्स के एक देहात में है। लेकिन बहुत दिनों से मेरे बाप-दादे बम्बई में रहते हैं। अब बम्बई ही हमारा घर है।"

वृद्धा ने थोड़ी देर चुप रहकर कहा—मेरे इस तरह पूछने से आप नाराज़ तो नहीं हैं? मैं केवल कौतूहल-वश आपसे ये प्रश्न नहीं करती।

"मैं बहुत प्रसन्न हूँ। आप जो चाहें, बिना संकोच के मुझसे पूछ सकती हैं।"

"बहुत-बहुत धन्यवाद। आप पञ्जाब या युक्त-प्रान्त में कभी घूमने गये हैं?"

"युक्त-प्रान्त में तो कभी नहीं गया। हाँ, पञ्जाब के कई शहर देखे हैं।"

इसी समय नौकर आकर उसकी आज्ञा की अपेक्षा करने लगा। "मुझे इस भर के लिए माफ़ करें" कहकर लेडी ने भोजन के सामान की फ़ेहरिस्त हाथ में लेकर अपने मन के भोजन की फ़रमाइश की। फिर मुझसे कहा—मैं क्या पूछना चाहती हूँ, सो आपसे ख़ुलासा करके कहती हूँ। मैं कई एक प्रसिद्ध मासिक पत्रों के लिए नई तसवीरें बनाया करती हूँ। भारत ही मेरा ख़ास विषय है। हाल में एक पत्र-सम्पादक ने एक हिन्दुस्तानी शिकार की स्टोरी मेरे पास चित्र बनाने के लिए भेजी है। उस स्टोरी का कथा-भाग यह है कि पञ्जाब के एक राजा और एक ब्रिटिश फ़ौजी सिपाही एक ही हाथी पर बैठकर जङ्गल में शिकार करने गये थे। दूर से बाघ का गरजना सुनकर राजा बहुत डरे और हाथी से उतरकर भाग गये। अँगरेज़ सिपाही ने शब्द पर लक्ष्य करके जङ्गल में घुसकर बाघ पर गोली चलाई। इस स्टोरी के लिए सम्पादक ने दो-एक चित्र माँगे हैं। जैसे—एक राजा के भागने का चित्र, दूसरा बाघ मारने का चित्र। इनमें दूसरा चित्र मैं बना रही हूँ। किन्तु पहले चित्र के लिए मैं बड़े असमञ्जस में पड़ी हूँ। भारत के राजाओं की

जो पोशाक दरबार आदि के चित्रों में देख पड़ती है वही पोशाक पहनकर वे शिकार करने जाते हैं या शिकार के लायक और किसी तरह की पोशाक पहनते हैं ?

यह कहानी सुनकर मेरे ख़ून में जोश हो आया। मैंने यथाशक्ति उसको दबाकर कहा—लेडी साहबा, बाघ का गरजना सुनकर राजा क्यों भागने लगे ? अँगरेज़ सैनिक का डर से भागना और राजा का बाघ को मारना ही सर्वथा सम्भव है।

मेरा रङ्ग-ढङ्ग देखकर वह लेडी मुसका दी। उसने कहा—आप भूलते हैं, मैं स्टोरी लिखनेवाली नहीं हूँ। मैं तो पारिश्रमिक लेकर उसके लिए केवल चित्र बना दूँगी।

तब मैंने लजाकर कहा—बेशक मुझसे भूल हुई। स्वदेश-वासी की निन्दा सुनकर एकाएक मुझको जोश आ गया था।

लेडी ने कहा—आपकी देश-भक्ति देखकर मैं बहुत प्रसन्न हुई। अब मेरे प्रश्न का उत्तर दीजिए।

मैंने कहा—आपके प्रश्न का उत्तर देना मेरे लिए कठिन है। मैंने अपनी आँखों से जो दो-एक राजा देखे हैं उनको बम्बई की सड़क पर या रेल में ही देखा है। शिकार के लिए जा रहे राजा को देखने का सुयोग कभी मुझे नहीं मिला।

यह सुनकर वह लेडी कुछ देर तक चुपचाप सोचती रही। फिर बोली—कल एक बार अच्छी तरह सचित्र पुस्तकें आदि

देखूँगी। शिकारी पोशाक पहने किसी हिन्दुस्तानी राजा का चित्र शायद मिल जाय।

इसके बाद और-और बातें होती रहीं। मैं इस देश में कितने दिनों से हूँ, इत्यादि बातों को उसने बड़े संकोच के साथ पूछा। अन्त को अपना एक कार्ड देकर कहा—मेरा घर पास ही है। अगर अवकाश के समय एक दिन आप पधारिए तो मैं अपने खींचे बहुत से रेखा-चित्र आपको दिखा सकती हूँ।

इस सदय निमन्त्रण के लिए अनेक धन्यवाद देकर मैंने अपना कार्ड उसे दिया। मेरा नाम देखकर उसने कहा—पाठक? बम्बई के परलोकगत प्रसिद्ध बैरिस्टर मिस्टर पाठक आपके कोई थे तो नहीं?

अपने पिता की कीर्त्ति के इतनी दूर तक फैलने का प्रमाण पाकर गर्व से मेरी छाती फूल उठी। मैंने कहा—मैं उन्हीं का लड़का हूँ। आपने उनका नाम कैसे सुना?

लेडी ने कहा—अख़बार में देखा था। वर्त्तमान भारत के सम्बन्ध में यथार्थ अभिज्ञता प्राप्त करने के लिए मैं कभी-कभी इण्डिया आफ़िस की लाइब्रेरी में जाकर बम्बई-कलकत्ते वग़ैरह के अख़बारों को पढ़ा करती हूँ। ओह—आज इस होटल में लोगों की कैसी भीड़ है। गर्मी के मारे मेरी तो साँस रुक रही है। अच्छा, अब मैं जाती हूँ।

३

इसके बाद दो दिन तक वह लेडी ब्रिटिशम्यूज़ियम में नहीं देख पड़ी। इन दो दिनों में नाटक का प्लाट ठीक करके मैंने नाटक लिखना शुरू कर दिया।

तीसरे दिन राजपूतइतिहास की अन्यान्य पुस्तकों के लिए मैं सूचीपत्र खोज रहा था, इसी समय देखा, वह लेडी (कार्ड से मालूम हुआ कि उसका नाम मिस कैम्बेल है) आकर मेरे पास खड़ी हो गई। मुसकाकर अभिवादन करके उसने हाथ बढ़ा दिया। हाथ मिलाना और कुशल-प्रश्न आदि समाप्त हो जाने पर मिस कैम्बेल ने बहुत ही कोमल स्वर में कहा—शायद आप राजपूताना देख रहे हैं?

ब्रिटिश म्यूज़ियम में ज़ोर से बोलने की मनाही है।

मैंने जल्दी से कहा—आपको क्या इसी खण्ड की ज़रूरत है? यह लीजिए, आप देख लेंगी तब मैं देखूँगा।

"आइए न, दोनों जने एक साथ ही देखें। राजाओं की शिकारी पोशाक के लिए आज राजपूताने का इतिहास खोजूँगी। आप क्या खोज रहे हैं?"

"मैं राजपूत-इतिहास से प्लाट लेकर एक नाटक लिख रहा हूँ।"

"आप क्या नाटककार हैं?"

लज्जित भाव से मैंने कहा—नाटककार तो नहीं हूँ। हाँ, एक नाटक लिखने की चेष्टा कर रहा हूँ।

"अच्छी बात है। एक दिन आपके नाटक का प्लाट सुनूँगी।"

"यह तो मेरे लिए सौभाग्य की बात है" कहकर मैंने उसके लिए कई पुस्तकें चुन दीं। दोनों अपनी-अपनी जगह पर जाकर अपना-अपना काम करने लगे।

मैं नित्य वहाँ जाकर नाटक लिखने लगा। मिस कैम्बेल भी नित्य आती थीं। किन्तु और किसी दिन मैंने उनको उक्त होटल में जाते नहीं देखा। वे शायद घर से ही लञ्च खाकर आती थीं।

एक दिन उनके बैठने की जगह पर जाकर मैंने उनके कान में कहा—क्या आज आपके यहाँ मैं तीसरे पहर चित्र देखने आ सकता हूँ?

उन्होंने बहुत ख़ुश होकर कहा—अच्छी बात है। ज़रूर आइए। आज आपको मेरे ही घर पर चाय पीनी पड़ेगी। मैं आपको साथ ही ले चलूँगी।

"बहुत बहुत धन्यवाद" कहकर मैं अपनी जगह पर लौट आया और अपना काम करने लगा।

तीन बजने पर मिस कैम्बेल ने आकर कहा—चलिए, चलें।

मैं पाठागार में पुस्तकें जमा कराकर, नाटक की कापी लेकर, मिस कैम्बेल के साथ उनके घर गया। वे ब्लूम्सबरी मैन्सन्स नामक बड़ी भारी इमारत के एक फ़्लैट् में रहती थीं। फ़्लैट् के एक कमरे में उनकी चित्रशाला (Studio) थी। वहाँ लेजाकर उन्होंने मुझे बिठा दिया। उन्होंने कहा—पाँच मिनट के लिए मुझे माफ़ कीजिए। रसोई बनाने-वाली से चाय का बन्दोबस्त करने के लिए कह आऊँ। आप तब तक दीवार के इन चित्रों को देखिए।

मैं इधर-उधर टहलकर उन चित्रों को देखने लगा। उनमें अधिकांश जल-वर्षा के चित्र थे। वृक्षों की क़तारों से घिरी हुई नीली-नीली झीलें, वेग से नाच रही नदियाँ, सिन्धु-जलधौत बालुकामय किनारा आदि प्राकृतिक दृश्य बहुत ही ख़ूबी के साथ अङ्कित थे। उनमें दो-एक तैल-चित्र भी थे। ईज़ेल के ऊपर रक्खी हुई एक अधबनी स्त्री की मूर्त्ति भी देखी।

कुछ देर में मिस कैम्बेल लौट आईं। वे एक-एक करके सब चित्रों का वृत्तान्त मुझे समझाने लगीं। अन्त को कहा—ये सब मेरे शौक़ की तसवीरें हैं। मैंने इनको शिल्पकला के अभ्यास के लिए खींचा है। अब उन चित्रों को देखिए जिन्हें मैं जीविका के लिए बनाती हूँ; जैसे भाग रहे राजा आदि।

उन्होंने एक बड़ा पोर्टफ़ोलियो निकाला।

मैंने कहा—आपने उस चित्र के लिए क्या किया?

लेडी ने हँसकर कहा—दरबारी पोशाक में ही राजा का चित्र बना दिया है। मैंने सम्पादक से मुलाक़ात करके इस पोशाक की समस्या का हाल कहा था। उन्होंने कहा—मासिक पत्रों के चित्रों में ऐसी बारीकियाँ देखने से काम नहीं चल सकता। राजा को ख़ूब मोटा-ताज़ा बनाकर दरबारी पोशाक ही पहना दीजिए। नहीं तो पाठक उन्हें राजा कैसे समझेंगे? इसलिए मैंने वैसा ही चित्र खींच दिया है।

पोर्टफ़ोलियो के चित्रों में देखा, अधिकांश चित्र कहानियों और उपन्यासों के ऊपर ही बनाये गये हैं। उनको देखते ही देखते चाय तैयार होने की खबर आई। मिस कैम्बेल मुझे लेकर अपने ड्राइंगरूम में गईं।

चाय पीते-पीते बातें होने लगीं। अकस्मात् टेबिल के ऊपर से मेरी कापी उठाकर मिस कैम्बेल देखने लगीं। बोलीं—शायद यही आपका नाटक है?

"हाँ।"

"कितना हुआ?"

"तीसरा अङ्क लिख रहा हूँ। दो अङ्क और होंगे।"

उन्होंने कापी के सफ़हे उलटते-उलटते कहा—इसकी कथा क्या है, पढ़िए।

मैं कथा-भाग सुनाने लगा। घटनाओं के सम्बन्ध में उन्होंने जगह-जगह पर कुछ रद्दोबदल करने की सलाह दी।

मैंने देखा, उनकी सलाह बहुत ही ठीक और काम की है। अन्त को कापी रखकर उन्होंने कहा—मुझे खेद है कि मैं आपकी रचना पढ़ने का आनन्द न प्राप्त कर सकूँगी। किन्तु मैंने एक समय हिन्दी सीखना शुरू किया था।

मैंने अचरज के साथ कहा—हिन्दी सीखती थीं? वाह! कितनी सीखी थीं?

"थोड़ी सी।"

"इस समय भी कुछ याद है?"

"नहीं। यह बहुत दिनों की बात है। इतना ही याद है कि कल्लू और मुन्नू दो बालक थे। इनमें मुन्नू ही मुझे अच्छा मालूम पड़ता था—उसके भीतर यथेष्ट सहृदयता थी। और कल्लू तो एकदम असार था, जिसे हम goody goody कहते हैं।"

मैं सुनकर हँसने लगा। मैंने कहा—आपके असाधारण अध्यवसाय को देखकर मैं आशा करता हूँ कि अगर आप फिर चेष्टा करें तो थोड़े ही दिनों में हिन्दी सीख लें।

"इस अवस्था में अब सीखकर क्या करूँगी? जब मैं सीखती थी तब मेरी अवस्था बीस बरस की थी।" इतना कहकर मिस कैम्बेल दूसरी ओर देखने लगीं।

उस समय दिन का उजेला बिल्कुल कम हो गया था। मिस कैम्बेल के चेहरे को मैं अच्छी तरह नहीं देख सका। तथापि मुझे सन्देह हुआ कि उनकी आँखों में मानो आँसू भरे

हुए हैं। उनका ख़याल दूसरी ओर फिराने के लिए मैंने कहा—एक प्याला चाय और मिल सकती है ?

उन्होंने जल्दी से कहा—क्षमा कीजिएगा। मैंने ध्यान नहीं दिया था कि आपका चाय का प्याला ख़ाली हो गया है। मेरा अतिथिसत्कार बिल्कुल अनुकरणीय नहीं है।

हँसते-हँसते उन्होंने फिर चाय से प्याला भर दिया। फिर कहा—आप ऐतिहासिक नाटक ही लिखेंगे या गार्हस्थ्य नाटक लिखने का भी इरादा है ?

"धीरे-धीरे गार्हस्थ्य नाटक लिखने की भी चेष्टा करूँगा।"

"मैं आपको गार्हस्थ्य नाटक का प्लाट दे सकती हूँ। वह सच्ची घटना है। एक हृदयभेदी प्रणय की कहानी है।"

मैंने आग्रह के साथ कहा—बहुत-बहुत धन्यवाद। प्लाट क्या है, बतलाइए न।

मिस कैम्बेल—पहले यह नाटक समाप्त कर लीजिए। फिर किसी दिन बतलाऊँगी।

और भी दस मिनट तक बातचीत होती रही। धीरे-धीरे अन्धकार घना हो आया। दासी ने आकर गैस जला दिया। तब मैं मिस कैम्बेल से बिदा हुआ।

वे उठकर दरवाज़े तक मेरे साथ आईं। फिर बोलीं—आपका नाटक समाप्त होने पर एक दिन आकर मुझे अनुवाद करके सब सुनाइएगा। भूलिएगा नहीं।

"उस सुयोग के लिए प्रतीक्षा करूँगा" कहकर मैं अभि-वादन करके चल दिया।

४

मेरा ऐतिहासिक नाटक समाप्त हो गया। यह ख़बर म्यूज़ियम में ही मैंने मिस कैम्बेल को दे दी। इस बीच में मेरी उनसे घनिष्ठता बढ़ गई। मैं उनके घर दो-एक बार और भी चाय पी आया हूँ। उनके बर्ताव और बातचीत से मेरी यह धारणा हो गई है कि वे मुझको हृदय से चाहती हैं।

एक दिन ब्रिटिश म्यूज़ियम में उन्होंने मुझसे कहा—कल मेरे पास कोई काम नहीं है। तुम अपना नाटक सुनाओगे?

"अच्छी बात है। कल किस समय आऊँ?"

"कल यहाँ आओगे क्या?"

"हाँ।"

"तो नाटक साथ लेते आना। यहाँ से कल एक बजे चलकर मेरे साथ लञ्च खाना।"

"बहुत-बहुत धन्यवाद। कल आप क्या यहाँ आवेंगी?"

"नहीं। मैं नहीं आऊँगी।"

"अच्छा, तो मैं एक बजे आपके घर पर हाज़िर होऊँगा।"

उस समय दिसम्बर का महीना था। सर्दी ज़ोरों से पड़ रही थी। प्रायः नित्य ही पाला गिरता था।

सबेरे उठकर देखा, पानी बरस रहा है।

सबेरे का भोजन समाप्त करते नव बज गये—लेकिन पानी नहीं रुका। दस बज गये, तब भी पानी नहीं रुका। मेरी लैंडलेडीने प्रचलित प्रवाद-वाक्य—Rain before seven, clear before eleven—कोट करके कहा—सात बजने के पहले पानी बरसना शुरू हुआ है; ग्यारह बजे अवश्य बन्द हो जायगा। किन्तु ग्यारह बजते ही, मानो लैण्डलेडी की भविष्यद्वाणी का प्रतिवाद करने के लिए ही, और भी ज़ोरसे पानी पड़ने लगा। बारह बजे; उस समय भी उसी तरह पानी बरसता रहा। और दिन होता तो मैं ऐसे समय कभी घर से बाहर न निकलता। किन्तु आज पहला रसिक श्रोता मेरी रचना सुनने के लिए आग्रह प्रकट कर चुका था। आज भला मैं रुक सकता हूँ? गाड़ी बुलाकर मैं मिस कैम्बेल के घर रवाना हुआ।

मुझे देखकर मिस कैम्बेल ने कहा—How very sweet of you to come in this weather! जान पड़ता है, तुम्हारा जूता भीग गया है?

"बहुत नहीं भीगा। मैं तो ब्रिटिश म्यूज़ियम गया नहीं। घर पर ही गाड़ी बुला ली थी। हाँ, उस पर चढ़ते-उतरते समय थोड़ा-थोड़ा भीग गया होगा।"

मेरी बात पर उन्हें विश्वास नहीं हुआ। झुककर मेरा जूता देखकर उन्होंने कहा—यह देखो, बहुत भीग गया है। खोल डालो, खोल डालो।

मिस कैम्बेल ने कहा, Silly boy ! तुम इस
क्यों होते हो ? जूता खोल डालो, नहीं
हो जाओगे ।—पृ० २०७

एक महिला के सामने जूता खोल डालने का प्रस्ताव सुनते ही मैं काँप उठा। उन्होंने मेरा भाव देखकर कहा—silly boy! तुम इस तरह horrified क्यों होते हो? सभी नियमों का व्यतिक्रम हो जाया करता है। खोल डालो, नहीं सख़्त बीमार हो जाओगे।

मैंने अपराधी की तरह कहा—बहुत तो भीगा नहीं। यह अच्छा न होगा कि आग के पास पैर रखकर बैठा रहूँ, जूते अभी सूख जायँगे।

उन्होंने कहा—बहुत भीग गया है। मगर पानी अभी तक तुम्हारे मोज़ों पर नहीं पहुँचा। मोजे भी भीग जायँगे तो बड़ी मुश्किल होगी। जूते खोलकर आग के पास रख दो। लञ्च में अभी देर है। दासी के आने से पहले ही तुम्हारे जूते सूख जायँगे।

मुझे तब भी टाल-मटोल करते देखकर अन्त को उन्होंने कहा—नहीं तो कहो मैं, दूसरे कमरे में चली जाऊँ। तुम्हारे जूते न सूखने तक न आऊँगी। तुम्हारी मा अगर ज़िन्दा होतीं और इस तरह कहतीं तो क्या तुम जूते न उतारते? तुम मुझे अपनी मा क्यों नहीं समझते?

उनकी अन्तिम बातें ऐसी करुणा-पूर्ण थीं—उन्होंने मेरे मातृहीन हृदय में ऐसी अमृतवर्षा की कि मैं और कुछ न कह सका। जूते उतार दिये।

अब हम दोनों जने आग के सामने बैठकर तरह-तरह की बातें करने लगे। डेढ़ बजा। मेरा जूते का जोड़ा भी सूख गया। जूते पहनकर मैं फिर भलामानुस हो गया।

मिस कैम्बेल ने तब लञ्च लाने के लिए दासी से कहा। घड़ी भर के बाद वे मुझे भोजन के कमरे में ले गईं। बातें करते-करते भोजन का काम समाप्त किया। दासी ने आकर टेबिल साफ़ किया। उसी कमरे में बैठकर मैं नाटक सुनाने लगा। कुछ दृश्यों का कथा-भाग मैंने ज़बानी ही सुना दिया। जिन-जिन दृश्यों में मुझे अपनी रचना के उत्कृष्ट होने का गुमान था उन्हीं का अनुवाद करके सुनाया। मेरा नाटक सुनकर वे प्रसन्न हुईं और बोलीं—पहली रचना होने के लिहाज़ से यह नाटक बहुत अच्छा हुआ है।

चार बज गये। चाय पी।

इस समय भी थोड़ी-थोड़ी वर्षा हो रही थी। आकाश मे अँधेरा छाया हुआ था। मैंने कहा—आपने मुझसे एक गार्हस्थ्य नाटक का प्लाट देने का वादा किया था। आज क्या वह क़िस्सा सुनाइएगा?

मिस कैम्बेल ने कहा—बतलाऊँगी। ड्राइंगरूम में चलो, वहीं कहूँगी। इस कमरे में शीघ्र अँधेरा हो जाता है।

हम लोगों ने ड्राइंगरूम में जाकर देखा, कुण्ड की आग बिल्कुल बुझ सी गई है। चारों ओर वायु का मार्ग रोकने-वाली 'सर्सी' बन्द हैं, तो भी भीतर कँपा देनेवाला जाड़ा है।

दासी ने कुण्ड में बहुत सा कोयला डालकर 'पोकर' से उसे खूब उसका दिया। आग फिर भड़क उठी।

मिस कैम्बेल ने अपना दुशाला अच्छी तरह ओढ़कर यों कहना शुरू किया—

"इस लन्दन के पास ही एक शहर की तलहटी में—तुम उसे अपने नाटक में हैमरस्मिथ या रिचमण्ड लिख सकते हो—एक मध्यवित्त गृहस्थ रहते थे। उनके एक लड़का और दो लड़कियाँ थीं। बेटे की अवस्था इकीस साल की होगी; उसका नाम क्या रक्खोगे? जार्ज या फ्रेड्रिक? अच्छा फ्रेड्रिक सही। फ्रेड्रिक का संक्षिप्त नाम फ्रेड अच्छा मालूम पड़ेगा। दोनों लड़कियों में बड़ी का नाम एलिजाबेथ या लिजी मान लो। यही तुम्हारी नायिका होगी। नाम बहुत पुराने ढंग का है; तुमको पसंद नहीं है? तो उसे माड या ग्लैडिस लिख सकते हो। माड की अवस्था उस समय उन्नीस साल की होगी। छोटी का नाम कैथरिन था। वह माड से दो बरस छोटी थी।

"लिखने-पढ़ने की ओर ही बड़ी लड़की का अधिक झुकाव था। उसने फ्रेंच, जर्मन और इटैलियन भाषाएँ अच्छी तरह सीख ली थीं। विकूर ह्यू गो, गेटे और दान्ते के मूलग्रन्थ वह पढ़ सकती थी। ग्रीक भाषा भी उसने सीख ली थी। इसी बीच में केम्ब्रिज से फ्रेड ने अपनी मा को पत्र लिखा कि 'वहाँ उसका एक सहपाठी हिन्दुस्तानी मित्र है। वह चाहता

है कि मैं उसे छुट्टी के डेढ़ महीने अपने घर में रक्खूँ।' मा ख़ुशी के साथ इस बात पर राज़ी हो गई। फ्रेड ने लिखा, अमुक तारीख़ को हम लोग आ जायँगे।

"किन्तु माड इस ख़बर से बहुत ही चिन्तित हुई। उसने पिता-माता से कहा—'हिन्दुस्तानी आदमी के साथ एक घर में कैसे रहूँगी?' उन्होंने बहुत समझाया, लेकिन किसी तरह माड की शङ्का दूर न हुई। मित्र के साथ फ्रेड जिस दिन घर आनेवाला था उसके पहले दिन माड अपनी मौसी के घर लन्दन चली गई।

"दो-तीन दिन बाद फ्रेड अपने मित्र के साथ माता और माड को लेने के लिए लन्दन पहुँचा। माड ने जब देखा कि हिन्दुस्तानी आदमी के सिर पर परों की टोपी नहीं है, चेहरे पर रङ्ग मला हुआ नहीं है, हाथ में तीर-कमान नहीं है, भालू के चमड़े की पोशाक नहीं है तब उसे धीरज हुआ। वह घर आ गई।

"क्रमशः माड को यह बात मालूम हुई कि वह—"

मैंने बीच ही में पूछा—नायक का नाम क्या रक्खूँ?

"वे हिन्दुस्तानी थे। हिन्दुस्तानियों का नाम क्या होना चाहिए सो तुम मुझसे अच्छा जानते हो। कोई नाम रख लो।"

मैंने सोचकर कहा—रघुनन्दन।

"अच्छा होगा। क्रमशः माड को यह बात मालूम हुई कि वे हिन्दुस्तानी संस्कृत भाषा अच्छी जानते हैं। उसने

मा से कहा—'मैं संस्कृत सीखूँगी।' यह सुनकर रघुनन्दन ने कहा—अच्छा तो है। मुझे भी फ्रेंच सीखने की बड़ी इच्छा है। आप मुझे फ्रेंच पढ़ाइएगा और मैं आपको संस्कृत सिखाऊँगा।

"इस तरह एक दूसरे का शिष्य हो गया। उस समय मई का महीना था। आकाश साफ़ नीला था। घर के पीछे का चमन बाटरकप्, प्रीमरोज़ और डेजी फूलों से भर गया था। चमन के बीच में एक लाइलाक का पेड़ था। वह बेशुमार फूलों से लद गया था। घर में गर्मी थी—इसी से सबेरे और तीसरे पहर एक चीना-बेत का टेबिल और दो हलकी कुर्सियाँ उसी लाइलाक के पेड़ के नीचे डालकर वे दोनों एक दूसरे को पढ़ाते थे। पेड़ की डाल में फूलों के भीतर छिपकर एक मेविस् पक्षी का जोड़ा दिन भर प्रेमगीत गाया करता था। धीरे-धीरे परस्पर दोनों के मन में अनुराग पैदा हो गया।

"माड के मा-बाप को इसका कुछ पता न था, किन्तु फ्रेड ठीक समझ गया था। वह दोनों बहनों के साथ कभी रिचमण्ड पार्क में और कभी क्यू गार्डेन्स में घूमने जाता था। माड और रघुनन्दन—घूमते-घूमते—अक्सर कैथरिन और फ्रेड को देख न पाते थे, खोजने से भी उनका पता न लगता था। असल में फ्रेड के कौशल से ऐसा होता था।

"क्रमशः रघुनन्दन ने सोचा कि माड के मा-बाप से इस बात को छिपा रखना बेजा होगा। तब उसने माड के

बाप से सब खुलासा हाल कह दिया। माड से ब्याह का प्रस्ताव करने के लिए उसने अनुमति माँगी।

"सब हाल सुनकर माड के बाप गम्भीर होकर सोचने लगे। अन्त में उन्होंने माड को भी वहाँ बुला भेजा। दोनों को लक्ष्य करके उन्होंने स्नेह के स्वर से कहा—इस समय तुम दोनों की थोड़ी अवस्था है। तुम्हें संसार का अनुभव ज़रा भी नहीं। परस्पर एक दूसरे के प्रति तुम्हारा यह भाव स्थायी है या सामयिक उत्तेजनामात्र—इसकी भी परीक्षा होना आवश्यक है। रघुनन्दन के बैरिस्टर होकर भारत जाने में अभी साल भर की देर है। मैं कहता हूँ, तुम लोग साल भर अपनी परीक्षा करो। एक साल तक तुम न तो परस्पर मिलो और न चिट्ठी-पत्री लिखो। यदि साल भर के बाद तुम्हारे मन का भाव ऐसा ही रहेगा तो मैं तुम्हारे ब्याह के लिए सम्मति दूँगा।

"यह सुनकर माड और रघुनन्दन दोनों बहुत ही उदास हुए। किन्तु दोनों ने यह भी समझ लिया कि यह परीक्षा लेना है भी बहुत आवश्यक। साल भर के लिए एक दूसरे से रोते-रोते बिछुड़ गया।

"माड के पिता से रघुनन्दन ने जो वादा किया था उसे उसने धर्म से निबाहा। केवल फ़्रेड से ही एक को दूसरे का कुशल-समाचार मिल जाता था। माड अपने भाई को केम्ब्रिज में जो पत्र भेजती थी, उसे फ़्रेड अपने मित्र रघुनन्दन

को दिखा देता था। साल भर तक उन्हीं चिट्ठियों के सहारे रघुनन्दन ने धैर्य रक्खा। छुट्टी में जब फ्रेड घर आता था तब रघुनन्दन उसे जो पत्र लिखता था, सब बहन को दिखाता था।

"इस तरह यह लम्बी परीक्षा समाप्त हुई। रघुनन्दन फिर आया। माड के मा-बाप की सम्मति से दोनों में ब्याह का वादा हो गया। बड़े ही आनन्द से दोनों के दिन बीतने लगे।

"जून की १६ तारीख को रघुनन्दन 'बार' में 'काल्ड' होगा। जूलाई के पहले सप्ताह में ब्याह का दिन ठहराया गया। निश्चय हुआ कि एक पखवारे भर दूलह-दुलहिन इटली में रहकर ब्रिण्डिसी से अपने देश को चले जायँगे।

"रघुनन्दन को यह सन्देह था कि उसके मा-बाप इस ब्याह के लिए शायद राज़ी न हों। साथ ही मा-बाप को वह बहुत मानता और चाहता भी था। उनकी राज़ी के बिना ब्याह करने के लिए उसका मन हुलसता न था। इसी से उसने एक लम्बी-चौड़ी चिट्ठी में सब हाल लिखकर मा-बाप से इस ब्याह के लिए आज्ञा माँगी।

"रघुनन्दन ने हिसाब करके देखा, जिस दिन बार में काल्ड होगा उसके दो दिन बाद भारत से उसके पिता का पत्र आ जायगा। पत्र की प्रतीक्षा का अन्तिम सप्ताह उसने बड़ी उदासी से बिताया। मा-बाप की आज्ञा के बिना ब्याह

करने में उसका आधा आनन्द चला जायगा, यह धारणा रघुनन्दन के हृदय में काँटे की तरह खटकती थी।"

इसी समय दासी रोशनी करने आई। वह रोशनी करके आग के कुण्ड में फिर बहुत सा कोयला डाल गई। अग्नि-देव ने फिर प्रचण्ड रूप धारण किया।

मेरे मन में यह विश्वास धीरे-धीरे बहुत ही दृढ़ होता जाता था कि यह माड मिस कैम्बेल ही है। उसके कहने का ढङ्ग ही ऐसा था। मैंने उत्सुकता के साथ पूछा—हाँ, फिर क्या उत्तर आया?

"पत्र से कुछ उत्तर नहीं आया। १८वीं जून थी। उस दिन वाटर्लू-युद्ध की जीत का सालाना जलसा था। उस दिन पत्र के बदले रघुनन्दन के बुड्ढे पिता ख़ुद आ गये। माड के पिता के पैर पकड़कर वे कहने लगे—मेरी रक्षा कीजिए। मेरे यही एक लड़का है। हम बुढ़िया-बड्ढों का यही एक सहारा है। देश ले जाकर, प्रायश्चित्त कराकर मैं इसे जाति में मिला लूँगा। अपनी जाति में ही हिन्दू-मत के अनुसार इसका ब्याह करूँगा अगर आपकी लड़की से शादी करेगा तो जन्म भर के लिए यह जाति से निकल जायगा। वंश में कोई भी फिर जाति में शामिल न हो सकेगा। लड़के को मैं घर में न रख सकूँगा। मरने पर हमारा दाह करने और पानी देने का इसे अधिकार न रहेगा। आपकी लड़की से ब्याह होगा तो मेरी स्त्री शोक के मारे आत्महत्या कर लेगी।

मैं दुःख से पागल हो जाऊँगा। कश्मीर घूमने जाने का बहाना करके मैं बम्बई से जहाज़ पर यहाँ आया हूँ। रास्ते भर फलाहारी सामान और कच्चे चूड़े खाता आया हूँ। मेरा लड़का मुझे फेर दीजिए।

"'बेटी' कहकर माड से भी वे इसी तरह कहने लगे। माड के पिता ने कहा—दोनों जने सयाने हैं। वे जो अच्छा समझेंगे, करेंगे। मैं उसमें रोक-टोक नहीं कर सकता। आपको भी उसमें बाधा देने का कोई अधिकार नहीं। याद रखिए, यह इण्डिया नहीं है—ग्रेट ब्रिटेन है—स्वाधीन देश है।

"अब माड के पिता ने रघुनन्दन को बुलाकर पूछा। उसने कहा—मैं ब्याह करूँगा। पिता की आज्ञा नहीं मिली, यह अवश्य ही मेरा अभाग्य है। लेकिन मैं उस स्त्री से, जिससे ब्याह का वादा कर चुका हूँ, इनकार नहीं कर सकता। इसे मैं सबसे बढ़कर अधर्म समझता हूँ।

"रघुनन्दन के बाप ने कहा—अरे पत्थर, ऐसी स्त्री का त्याग ही क्या केवल अधर्म है? पिता-माता की हत्या क्या पुण्यकार्य है?

"रघुनन्दन तो भी अपनी बात पर अटल रहा। किन्तु माड फिर गई। उसने कहा—ऐसी दशा में मैं कभी रघुनन्दन से शादी न करूँगी।

"उसके बाप, मा, फ्रेड और कैथरिन ने उसे बहुत समझाया। किन्तु माड ने किसी तरह न माना।

"अन्त को रघुनन्दन ने उसे अकेले में ले जाकर प्रेम की दोहाई देकर बहुत कुछ कहा-सुना। किन्तु माड राज़ी नहीं हुई।

"तब रघुनन्दन ने कहा—मैं अपने ऊपर जितना और जैसा प्रेम तुम्हारा समझता था वह यदि सच्चा होता तो हमारे मिलने को कोई भी रुकावट नहीं रोक सकती थी। तो क्या वह मेरा पहले का विश्वास ग़लत है?

"माड ने इस कथन का कुछ प्रतिवाद नहीं किया।

"रघुनन्दन ने कहा—समझ लिया। जब बिछुड़ना किसी तरह टल नहीं सकता तब अगर तुम्हारे अटल प्रेम को मैं साथ ले जा सकता तो भी शायद मुझे कुछ ढाढ़स होता। तुमने उससे भी मुझे वञ्चित कर दिया।

"इतने पर भी माड ने कुछ प्रतिवाद नहीं किया।

"तब रघुनन्दन माड का दाहना हाथ अपने हाथ मे लेकर उस पर चुम्बन और आँसुओं की वर्षा करने लगा। इसके बाद जन्म भर के लिए दोनों बिछुड़ गये।"

यह शोक-कहानी सुनते-सुनते मेरी भी आँखों में आँसू भर आये थे। मिस कैम्बेल चुप हो रहीं। बड़े कष्ट से बोलने की शक्ति पाकर मैंने कहा—इसके बाद?

कई मिनट तक मिस कैम्बेल से भी बोला नहीं गया। उनके कपोलों से बड़े-बड़े आँसू ढुलकने लगे। यह दृश्य देखकर मैंने सिर झुका लिया।

कुछ देर बाद वृद्धा के क्षीण स्वर ने फिर मेरे कानों में प्रवेश किया। वे कहने लगीं—

"माड ने उस समय प्रतिवाद नहीं किया था, लेकिन एक दिन करेगी। परलोक में फिर जब रघुनन्दन के साथ उसकी भेंट होगी तब प्रतिवाद करेगी। इस बात की वह प्रतीक्षा कर रही है। रघुनन्दन के चले जाने पर माड बहुत बीमार पड़ गई थी। उसके जीने की आशा न थी। किन्तु वह अभागिन इस तरह सहज में मर कैसे सकती थी? रघुनन्दन ने देश से मँगाकर उसे सोने की दो चूड़ियाँ दी थीं। उन चूड़ियों को माड सदा पहने रहती थी। कई साल हुए, एक अखबार देखने से उसे मालूम हुआ कि उसका प्यारा अब इस संसार में नहीं है। उसी दिन उसने दोनों हाथ की चूड़ियाँ उतार डालीं। उसने सुना था कि हिन्दू-स्त्रियाँ विधवा होने पर हाथ में चूड़ियाँ नहीं पहनतीं। माड के सोने के कमरे में उसके प्यारे का एक तैलचित्र रक्खा हुआ है। उसे ही देखकर, इस जन्म के अन्त में चिरमिलन की प्रतीक्षा में वह अभी तक जीती है।"

अब मिस कैम्बेल चुप हो गईं। मैं आँसू पोंछकर पहले की तरह सिर झुकाकर सोचने लगा—वे बैरिस्टर कौन थे? बम्बई के अधिकांश पुराने बैरिस्टरों को मैं जानता हूँ। किस साल की यह घटना है, यह मालूम हो तो ला-लिस्ट देखकर ज़रूर मैं उस बैरिस्टर का पता लगा सकता हूँ। मैंने पूछा—किस साल की यह घटना है?

कुछ जवाब नहीं मिला।

मैंने तब सिर उठाकर देखा, मिस कैम्बेल की साँस धीमी चल रही थी और आँखें खुली हुई थीं। उनका सिर एक ओर लुढ़का हुआ था।

सर्वनाश! ये तो बेहोश हो गईं।

दीवाल में लगे हुए घण्टे के फ़ीते को मैंने बड़े ज़ोर से खींचा। दासी दौड़कर आई, पूछा—क्या है महाशय?

"तुम्हारी मालकिन बेहोश हो गई हैं। पानी लाओ—पानी लाओ!"

दासी दौड़कर पानी लेने गई। मैंने सब दर्वाज़े खोल दिये। बर्फ़ की तरह ठण्डी हवा कमरे में आने लगी। मिस कैम्बेल के ऊपर से दुशाला हटाकर अलग रख दिया। पानी आया। उनके मुँह और आँखों पर मैं उसी ठण्डे पानी के छींटे मारने लगा। दासी ने उनकी पोशाक का कुछ हिस्सा खोल दिया। स्मेलिङ्ग साल्ट लाकर उनकी नाक के छेदों पर रक्खा। तब मिस कैम्बेल ने धीरे-धीरे सिर उठाया। धीरे से बोलीं—क्या हुआ?

दासी ने कहा—मालकिन, आग की गर्मी से आप बेहोश हो गई थीं।

मैंने कहा—कमरे के सब दर्वाज़े बन्द करके इस तरह आग जलाना ठीक नहीं हुआ। अब आपकी कैसी तबियत है मिस कैम्बेल?

"मैं बेहोश हो गई थी ? आपको कष्ट हुआ; माफ़ कीजिएगा। अब मैं अच्छी हूँ।"

"चलिए, मैं आपको पलँग पर चलकर लिटा दूँ।"

"चलो" कहकर वे उठने की चेष्टा करने लगीं। किन्तु फिर उनका शरीर शिथिल हो पड़ा। कटी हुई लता की तरह वे कुर्सी पर गिर पड़ीं।

दासी और मैं दोनों उन्हें पकड़कर सोने के कमरे में ले गये। पलँग पर उन्हें लिटाकर मैंने दासी से कहा—मैं जाकर डाकृर लाता हूँ। तब तक तुम बाहर के दर्वाजे खोल दो।

यह कहकर घूमते ही मैंने देखा, दीवाल पर एक तैल-चित्र लटका हुआ है। मैंने देखते ही पहचान लिया, वह मेरे बाप की जवानी की मूर्ति थी! यह चित्र जिस फोटो से बना था उसकी एक कापी मेरे 'अलबम' में रक्खी थी।

सब समझ में आ गया। जाकर डाकृर को बुला लाया। उनकी दवा और हमारी सेवा-शुश्रूषा से नव बजे रात को मिस कैम्बेल की तबियत ठीक हुई। उन्हें एक प्याला गर्म शोरुआ पिलाकर मैं रात को वहाँ से चला आया।

५

इस घटना के बाद एक साल और मैं विलायत में रहा। मिस कैम्बेल के पास सदा आया-जाया करता था। वे

मुझे पुत्र की तरह चाहती थीं। मैं उन्हें पत्र आदि में माता लिखता था, लेकिन उनके सामने न कह सकता था। लज्जा लगती थी।

पीछे से उन्होंने मुझसे कहा कि ब्रिटिश म्यूज़ियम के पाठागार में मुझे देखते ही, मेरे पिता की सूरत से बहुत मिलती हुई शकल देखकर, वे ठिठक गई थीं। मेरा परिचय पाने के लिए उत्कण्ठित होकर उस दिन वे मेरे पीछे-पीछे उस होटल में गई थीं। नहीं तो खुली जगहों में भोजन आदि करना उन्हें बिलकुल पसन्द नहीं।

मैं ठीक समय पर बैरिस्टर हो गया। मैंने उनको साथ लाने के लिए बड़ी कोशिश की। कहा, आप अब बूढ़ी हो गई हैं। इस समय आपकी सेवा होनी चाहिए। मेरे घर चलकर माता की तरह हमारी सेवा स्वीकार कीजिए। लेकिन मैं उन्हें किसी तरह राज़ी नहीं कर सका। उन्होंने कहा—इस अवस्था में जन्मभूमि छोड़कर और कहीं जाने से मुझे शान्ति नहीं मिलेगी।

भारत में आकर मैं उन्हें हर मेल में चिट्ठी भेजता था। उनके पत्र भी मिलते थे। मेरा ब्याह होने पर उन्होंने मेरी स्त्री को वे दोनों सोने की चूड़ियाँ भेज दीं। मेरी स्त्री सदा उन्हें पहने रहती है।

इसके बाद मेरे एक लड़का हुआ। उन्होंने लिखा, "लड़के के ज़रा और बड़े होने पर उसे और उसकी मा को लेकर

तुम एक बार विलायत आना। मरने के पहले तुम तीनों जनों को देखने की मुझे बड़ी इच्छा है।" यह इच्छा उन्होंने लगातार कई चिट्ठियों में प्रकट की। दूसरे साल विलायत जाने का हमने निश्चय कर लिया। उनको चिट्ठी लिखी। किन्तु वह पत्र डेढ़ महीने के बाद लौट आया। लिफ़ाफ़े के ऊपर लन्दन के पोस्टआफ़िस की मोहर लगी हुई थी। उस पर लिखा था—"मालिक मर गया है। पत्र नहीं दिया गया।"

मैं दुबारा 'मातृहीन' हुआ।

दुलारी

१

एक ही महल्ले के रहनेवाले डाकृर हर और जूनियर वकील किशोरीलाल तीसरे पहर पान चबाते-चबाते, हाथ की छड़ी हिलाते-घुमाते मुख़्तार ज़यराम के पास गये और बोले—मुख़्तार साहब, पुरवा के ठाकुरों के यहाँ से हम लोगों को न्यौता मिला है। सोमवार के दिन जङ्गीसिंह की लड़की की शादी है। सुना है, ख़ूब धूमधाम होगी। लखनऊ, बनारस वग़ैरह से रण्डियाँ और भाँड़ बुलाये गये हैं। क्या आपको भी न्यौता मिला है?

मुख़्तार साहब अपनी बैठक के बरामदे में बेञ्च पर बैठे हुक़ा पी रहे थे। आनेवालों के इस प्रश्न को सुनकर, हुक़ा रखकर, ज़रा जोश में आकर उन्होंने कहा—कैसे? मुझे न्यौता न मिलेगा कैसे? जानते हो, मैं आज बीस बरस से उनकी रियासत का मुख़्तार हूँ। मुझे छोड़कर तुमको न्यौतेंगे—यह बात क्या तुम्हारी समझ में सम्भव है?

जयराम मुख़्तार को ये लोग अच्छी तरह पहचानते थे। वे मामूली सी बात पर रूठ जाते थे। लेकिन उनका हृदय स्नेह, बन्धुवात्सल्य आदि के द्वारा फूल के समान

कोमल था। जिससे ज़रा भी उनसे हेलमेल हुआ वही इस बात को जान गया। वकील साहब ने जल्दी से कहा—नहीं नहीं। यह बात नहीं—यह बात नहीं। आप क्या ख़फ़ा हो गये मुख़्तार साहब? हमने क्या इस भाव से पूछा था? इस ज़िले में ऐसा कौन रईस है जिसका उपकार आपने नहीं किया? सभी आपकी ख़ातिर करते हैं। हमारे पूछने का मतलब यह था कि आप उस दिन पुरवा जायँगे या नहीं?

मुख़्तार साहब नरम हुए। बोले—"भाइयो, बैठो।" सामने की दूसरी बेञ्च पर दोनों आगन्तुक बैठ गये। तब मुख़्तार साहब बोले—पुरवा न्यौते जाने में एक कठिनाई है। सोमवार, मङ्गल, दो दिन कचहरी की नागा हो जायगी। लेकिन, न जाने से ठाकुर साहब नाराज़ होंगे। तुम जाओगे?

डाक्टर दर—जाने की तो बड़ी इच्छा है—लेकिन इतनी दूर जाना तो सहज नहीं है। बैलगाड़ी पर जायँ तो जाने के लिए दो दिन और आने के लिए दो दिन चाहिए। पालकी पर जा सकते हैं। सो उसका मिलना कठिन है। इसी से हम दोनों जनों ने यह सलाह की कि चलो, मुख़्तार साहब से चलकर पूछें। अगर वे जायँगे तो ज़रूर राजा साहब के यहाँ से हाथी-वाथी मँगावेंगे। उसी पर हम लोग भी आराम से चले जायँगे।

मुख़्तार साहब ने मुसकाकर कहा—यह बात है: तो इसके लिए क्या चिन्ता है भैया?—कुन्दनपुर के राजा

साहब मेरे आज के मवक्किल नहीं हैं। उनके बाबा के आगे से मैं उनके यहाँ का मुख़्तार हूँ। मैं कल सबेरे चिट्ठी लिख भेजूँगा। शाम को हाथी आ जायगा।

किशोरीलाल—देखा ठाकुर। मैंने तो कहा ही था कि इतनी चिन्ता क्यों कर रहे हो? मुख़्तार साहब कोई न कोई उपाय कर देंगे। हाँ मुख़्तार साहब, तो फिर आपको भी हमारे साथ चलना होगा। आपको हम नहीं छोड़ने के।

जयराम—जाऊँगा क्यों नहीं भाई, मैं भी जाऊँगा। लेकिन मेरी तो अब दादरा-खेमटा सुनने की अवस्था नहीं है—तुम लोग सुनना। मैं सिर पर पगड़ बाँधकर, एक नारियल हाथ में लिये—तमाखू पीते-पीते, लोगों की अभ्यर्थना करूँगा; किसने खाया और किसने नहीं खाया, इसकी जाँच करता फिरूँगा। और तुम बैठकर सुनना—"प्याला मुझे भरदे रे साक़ी"—क्यों न?

मुख़्तार साहब ज़ोर से हँसने लगे।

२

दूसरे दिन रविवार था। इस दिन मुख़्तार साहब ने सबेरे की पूजा ज़रा विधि-विधान के साथ की। ९ बजे के समय पूजा समाप्त करके जलपान के बाद बैठक में आकर बैठे। बहुत से मवक्किल बैठे थे। उनसे बातचीत करने लगे। एकाएक बस हाथी की याद आ गई। तब काग़ज़

क़लम लेकर, चशमा लगाकर, ऊपर "प्रबल प्रतापी श्री १०८ श्रीमन्महाराज कोशलेश्वरसिंह बहादुर आश्रितजनप्रतिपालक की सेवा में" लिखकर एक अच्छे हाथी की ज़रूरत जताते हुए मुख़्तार साहब ने चिट्ठी लिखी। पहले भी ज़रूरत पड़ने पर कई दफ़े इसी तरह मुख़्तार साहब ने हाथी मँगाया था। एक नौकर को बुलाकर वह चिट्ठी दी और उसी समय जाने के लिए कहा। इसके बाद मवक्किलों से बातचीत करने लगे।

मुख़्तार साहब की अवस्था इस समय पचास के ऊपर होगी। डील लम्बा और रङ्ग गेहुँआ है। दाढ़ी बड़ी है, उसके बाल खिचड़ी हैं। आँखें बड़ी-बड़ी हैं। उनके हृदय की कोमलता आँखों से झलकती है।

पहले इनका घर लखनऊ में था। ये जब यहाँ पहले मुख़्तारी करने आये थे तब इधर रेल नहीं थी। कुछ दूर ऊँटगाड़ी पर, कुछ दूर बैलगाड़ी पर और कुछ दूर पैदल चलना पड़ता था। ये जब यहाँ आये थे तब इनके पास एक कैम्बिश का बैग और एक पीतल का लोटा भर था। अहाय-सम्पत्ति कुछ न थी। दो रुपये महीने किराये का मकान लेकर, अपने हाथ पकाते-खाते हुए, मुख़्तार साहब ने मुख़्तारी का काम करना शुरू कर दिया था। उन्हीं बाबू जयराम ने इस समय पक्का मकान बनवा लिया है, बाग़ लगवाया है, तालाब खुदवाया है, एक शिवाला बनवाया है। बहुत सा

रुपया भी जमा कर लिया है। जिस समय की बात कही जा रही है उस समय इस ज़िले में अँगरेज़ी पढ़े मुख़्तारों का आविर्भाव हो चुका था। लेकिन जयराम की उन्नति को कोई रोक नहीं सका। उस समय भी वे ज़िले के प्रधान मुख़्तार समझे जाते थे।

मुख़्तार साहब का हृदय अत्यन्त कोमल और स्नेहपूर्ण होने पर भी उनका मिज़ाज कुछ रूखा था। जवानी में ये बड़े ताववाज़ थे, लेकिन अब ख़ून कुछ ठण्डा हो गया है। उस समय हाकिम लोग अगर ज़रा भी अविचार या अत्याचार करते थे तो मुख़्तार साहब ग़ुस्से से चिल्लाकर अनर्थ-पात कर देते थे। एक दिन इजलास पर एक डिपुटी से इनसे बहुत कहा-सुनी हो गई। तीसरे पहर घर में आकर जयराम ने देखा, गाय के बछड़ा पैदा हुआ है। इन्होंने उस बछड़े का वही नाम रक्खा जो डिपुटी का था। डिपुटी साहब को इस बात का पता लग गया। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस ख़बर से वे कुछ बहुत ख़ुश नहीं हुए। और एक बार एक डिपुटी के सामने मुख़्तार साहब क़ानून-सम्बन्धी एक तर्क कर रहे थे, किन्तु हाकिम किसी तरह इनके कथन का अनुमोदन न करता था। अन्त को ख़फ़ा होकर मुख़्तार साहब कह उठे—'मेरी स्त्री को जितना क़ानून का ज्ञान है उतना भी हुज़ूर को नहीं है।' उस दिन अदालत का अपमान करने के अपराध में मुख़्तार साहब पर पाँच रुपया जुर्माना

हुआ था। इस आज्ञा के विरुद्ध वे हाईकोर्ट तक लड़े। सब सत्रह सौ रुपये ख़र्च करके मुख़्तार साहब ने वह जुर्माना रद्द कराया।

मुख़्तार साहब जैसे बहुत रुपये कमाते थे वैसे ही ख़र्च भी करते थे। वे बराबर भूखों को अन्न देते थे; सताये हुए ग़रीब आदमी का मुक़दमा बिना फ़ीस लिये—कभी-कभी अपना रुपया ख़र्च करके—कर देते थे।

हर एतवार को महल्ले के जवान और बूढ़े लोग मुख़्तार साहब की बैठक में जमा होकर ताश-चौसर वग़ैरह खेलते थे। आज भी वैसे ही बहुत लोग जमा हैं। डाकृर दर और वकील किशोरीलाल भी मौजूद हैं। हाथी को बाँधने के लिए बाग़ में कुछ जगह साफ़ कर दी गई है। रात को हाथी के खाने के लिए बड़े-बड़े कई केले के पेड़ और अन्यान्य वृक्षों की पत्तीदार डालियाँ काटकर जमा की गई हैं। मुख़्तार साहब बार-बार जाकर इन कामों की जाँच कर आते हैं। बीच-बीच में बैठकख़ाने में आकर हुक़्के के दो-एक कश पीते हैं और फिर बाहर चले जाते हैं।

शाम से कुछ पहले जयराम बाबू बैठक में चौसर खेल रहे थे। इसी समय उस पत्र ले जानेवाले नौकर ने आकर कहा—हाथी नहीं मिला।

जयराम निराश होकर बोल उठे—अयँ! नहीं मिला?

डाकृर दर ने कहा—सब मट्टी हो गया!

मुख़्तार साहब ने कहा—क्यों रे, हाथी क्यों नहीं मिला? चिट्ठी का जवाब लाया है?

नौकर—जी नहीं। दीवानजी को जाकर मैंने चिट्ठी दी। वे चिट्ठी लेकर राजा साहब के पास गये। थोड़ी देर बाद आकर उन्होंने कहा—ब्याह का न्यौता आया है तो उसके लिए हाथी की क्या ज़रूरत? कहो, बैलगाड़ी पर चले जायँ।

यह सुनते ही क्षोभ, लज्जा और क्रोध से मुख़्तार साहब पागल-से हो उठे। उनके हाथ-पैर काँपने लगे। आँखों से जैसे ख़ून बरसने लगा। चेहरे की नसें फूल उठीं। काँपते हुए स्वर में गर्दन टेढ़ी करके वे बारम्बार कहने लगे—हाथी नहीं दिया! हाथी नहीं दिया!

सब लोग, जो जमा थे, खेल बन्द करके पाँसे उठाकर बैठ गये। किसी ने कहा—इसके लिए आप क्या करेंगे मुख़्तार साहब! पराई चीज़ है, उस पर कुछ ज़ोर तो है नहीं। एक अच्छी बैलगाड़ी किराये पर बुला लीजिए। रात को दस या ग्यारह बजे चल दीजिए। ठीक समय पर पहुँच जाइएगा। इमामुद्दीन शेख़ जो बैल लाया है वे ख़ूब जाते हैं।

जयराम ने ऐसा कहनेवाले की ओर देखा भी नहीं। कहने लगे—नहीं। बैलगाड़ी पर चढ़कर मैं न जाऊँगा। अगर हाथी पर चढ़कर जाऊँगा तो जाऊँगा; नहीं तो इस ब्याह में जाऊँगा ही नहीं।

३

रायबरेली शहर से तीन-चार कोस के भीतर दो-तीन ज़मींदारों के यहाँ हाथी थे। उसी रात को जयराम ने सब जगह नौकर भेजे, और कहलाया कि अगर उनमें से कोई अपना हाथी बेचे तो वे ख़रीदने के लिए तैयार हैं। आधी रात के पहले ही एक आदमी ने लौट आकर कहा—सोनामऊ के ज़मींदार के यहाँ एक हाथी बिकाऊ है—अभी बच्चा ही है—लेकिन बहुत दाम माँगते हैं।

"कितना ?"

"दो हज़ार रुपये।"

"बिल्कुल बच्चा है ?"

"नहीं; सवारी देता है।"

"कुछ परवा नहीं। उसे ही ख़रीदूँगा। अब तू जा। कल सबेरे ही हाथी आना चाहिए। ज़मींदार साहब से मेरा सलाम कहके कहना कि हाथी के साथ किसी विश्वासी कर्मचारी को भेज दें। वह हाथी के साथ आकर रुपये ले जाय।"

दूसरे दिन सबेरे सात बजे हथिनी आ गई। उसका नाम था दुलारी। ज़मींदार का कर्मचारी टिकट लगाकर, रसीद देकर, दो हज़ार रुपये गिनाकर चला गया।

घर में हथिनी आते ही महल्ले के सब लड़के आकर बैठक के चौतरे पर जमा हो गये। दो-एक ढीठ लड़के चिल्ला-

चिल्लाकर कहने लगे—"हाथी, हाथी के सिर पर लाठी।" घर के लड़कों ने इस पर ख़फ़ा होकर उन लड़कों को घर के बाहर निकाल दिया।

हथिनी जाकर ज़नाने के दरवाज़े पर खड़ी हो गई। मुख़्तार साहब की स्त्री मर चुकी थीं। उनकी बड़ी बहू एक लोटे में जल लेकर डरते-डरते पैर रखती हुई बाहर निकली। काँपते हुए हाथों से हथिनी के चारों पैरों पर थोड़ा-थोड़ा पानी डाल दिया। महावत के इशारे पर हथिनी बैठ गई। बहू ने उसके मस्तक में तेल-मिला हुआ सेंदुर लगा दिया। छोटा लड़का शंख बजाने लगा। फिर हथिनी के खड़े होने पर एक डलवे में चावल, केले और अन्यान्य मंगल की चीज़ें भरकर उसके सामने रख दी गईं। सूँड़ से उठा-उठाकर कुछ तो उसने खाया और बहुत सा छिटका दिया। इस तरह हथिनी के आने का पहला कृत्य समाप्त हुआ। राजा के हाथी के लिए जो जगह साफ़ की गई थी उसी जगह दुलारी बाँधी गई। राजा के हाथी के खाने के लिए जो सामान इकट्ठा किया गया था उसे दुलारी खाने लगी।

पुरवा के न्यौते से लौट आने पर, दूसरे दिन सबेरे ही मुख़्तार साहब राजा कोशलेश्वरसिंह से मिलने गये। कहना न होगा कि वे हथिनी पर बैठकर ही गये।

दूसरे खण्ड पर राजा साहब की बैठक थी। बैठक के सामने लम्बा-चौड़ा आँगन था। आँगन के दूसरे छोर पर

भीतर आने के लिए फाटक था। बैठक में बैठने पर सारा आँगन और फाटक के बाहर तक राजा साहब को देख पड़ता था।

राजा के पास पहुँचकर अभिवादन करके मुख़्तार साहब बैठ गये। मुक़द्दमे-मामले की दो-एक बातों के बाद राजा साहब ने पूछा—मुख़्तार साहब, यह हाथी किसका है?

मुख़्तार साहब ने विनीत भाव से कहा—सरकार का ही है।

राजा ने विस्मित होकर कहा—मेरा हाथी! इस हाथी को तो मैंने किसी दिन देखा नहीं। कहाँ से आया?

"जी, मैंने इसे सोनामऊ के ज़मींदारों से ख़रीदा है।"

और भी विस्मित होकर राजा ने कहा—आपने ख़रीदा है?

"जी हाँ।"

"मगर आपने तो कहा 'मेरा हाथी है'?"

विनय या व्यङ्ग्य से—कुछ ठीक समझ में नहीं आया—ज़रा मुसकाकर मुख़्तार साहब ने कहा—सरकार से ही मेरा प्रतिपाल होता है—मैं ही जब आपका हूँ तब हाथी भी आपके सिवा और किसका है?

सन्ध्या के बाद घर लौटकर, बैठक में बैठकर, मित्रमण्डली के सामने मुख़्तार साहब ने यह हाल विस्तार के साथ कहा। उनके हृदय से सारा क्षोभ और लज्जा मिट गई। कई दिनों के बाद आज उनको अच्छी तरह नींद आई।

•

६

इस घटना के बाद पाँच बरस बीत गये। इन पाँच बरसों में मुख़्तार साहब की हालत बहुत बदल गई है।

नये नियम से पास किये हुए शिक्षित मुख़्तारों से ज़िले की अदालतें भर गई हैं। शिथिल नियम के वकील-मुख़्तारों की अब क़दर नहीं रही। धीरे-धीरे जयराम की आमदनी कम होने लगी। पहले जो पैदा करते थे उसका आधा भी अब नहीं मिलता। लेकिन ख़र्च हर साल बढ़ता ही जाता है। उनके तीन लड़के हैं। पहला और दूसरा, दोनों लड़के मूर्ख हैं—वंश बढ़ाने के सिवा और कोई काम उनसे नहीं हो सकता। छोटा लड़का हाई-स्कूल में पढ़ता है। उसी के किसी लायक़ होने की उम्मेद है।

अब अपने रोज़गार के ऊपर जयराम को वैसा अनुराग नहीं है। उससे वे बहुत ही खीझ उठे हैं। छोकरे मुख़्तार, जिनको किसी समय उन्होंने रास्ते में नंगे खेलते देखा है, इस समय सिर पर शमला रखकर (मुख़्तार साहब शमला नहीं, अपने हाथ से पगड़ी बाँधते थे) उनके ख़िलाफ़ खड़े होकर आँख-मुँह मटकाकर अँगरेज़ी में हाकिम से न-जाने क्या फर-फर फर-फर कह जाते हैं। पास खड़े हुए अँगरेज़ी-पढ़े जूनियर से मुख़्तार साहब पूछते हैं—ये क्या कह रहे हैं? जब तक उसका तर्जुमा करके जूनियर समझाते हैं तब तक दूसरा

प्रसङ्ग उपस्थित हो जाता है। मुँह का जवाब मुँह में ही रह जाता है। व्यर्थ क्रोध से मुख़्तार साहब फूला करते हैं। इसके सिवा पहले के हाकिम लोग मुख़्तार साहब को बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। आजकल के हाकिमों में वह भाव नहीं है। इन हाकिमों को शायद यह विश्वास है कि जो अँगरेज़ी नहीं जानता वह आदमी ही नहीं। इन्हीं सब कारणों से मुख़्तार साहब ने यह तय किया है कि अब मुख़्तारी को इस्तीफ़ा दे देना ही अच्छा है। उन्होंने जो रक़म जमा की है उसी के सूद से किसी तरह गुज़र करेंगे। साठ बरस के लगभग अवस्था हुई—क्या सदा मेहनत ही करते रहेंगे? क्या अभी विश्राम का समय नहीं हुआ? बड़ा लड़का अगर लायक़ होता—चार पैसे कमा सकता—तो वे अब तक न-जाने कब के काम-काज से छुट्टी ले चुके होते। घर में बैठकर राम का नाम जपते। किन्तु अब अधिक दिनों तक मेहनत नहीं की जा सकती। तथापि "आज-कल" करते-करते एक साल और गुज़र गया।

इसी समय दौरे में एक ख़ून का मुक़द्दमा आया। उस मुक़द्दमे में असामी ने जयराम को अपना मुख़्तार बनाया। एक नये अँगरेज़ जज आये थे—उन्हीं के इजलास में पेशी थी।

तीन दिन मुक़द्दमा चला। अन्त को मुख़्तार साहब ने उठकर "जज साहब बहादुर और असेसर लोग" कहकर

लेक्चर शुरू किया। लेक्चर के अन्त में असेसरों ने जयराम के मवक्किल को बेक़सूर ठहराया। जज साहब ने भी उनकी राय से इत्तिफ़ाक़ करके असामी को छोड़ दिया।

जज साहब को सलाम करके मुख़्तार साहब अपने काग़ज़-पत्र बाँध रहे थे, इसी समय जज साहब ने पेशकार से पूछा—इन वकील का नाम क्या है?

पेशकार ने कहा—बाबू जयरामदास। ये वकील नहीं, मुख़्तार हैं।

प्रसन्न हँसी के साथ जयराम की तरफ़ देखकर जज साहब ने कहा—आप मुख़्तार हैं?

"हाँ हुज़ूर, आपका तावेदार मुख़्तार है।"

जज साहब ने पहले ही ढङ्ग से कहा—आप मुख़्तार हैं! मैं समझा था आप वकील हैं। ऐसी होशियारी के साथ आपने यह मुक़दमा चलाया है कि मैंने आपको इस ज़िले का एक अच्छा वकील समझा था।

ये बातें सुनकर जयराम की बड़ी-बड़ी आँखों में आनन्द के आँसू भर आये। दोनों हाथ जोड़कर काँपते हुए स्वर में उन्होंने कहा—ना हुज़ूर, मैं वकील नहीं हूँ। मैं तो मामूली मुख़्तार हूँ। सो भी पुराने समय का शिथिल मूर्ख मुख़्तार हूँ। हुज़ूर, मैं अँगरेज़ी नहीं जानता। आपने आज जो मेरी बड़ाई की है उसे मरते दम तक नहीं भूलूँगा। यह बुड्ढा हुज़ूर को दुआ देता है कि हुज़ूर हाईकोर्ट के जज हो जायँ।

इसके बाद झुककर सलाम करके मुख़्तार साहब इजलास से बाहर आये।

फिर वे कभी कचहरी नहीं गये।

५

रोज़गार छोड़कर कष्ट से मुख़्तार साहब अपना गुज़र करने लगे। उन्होंने जिस तरह ख़र्च करना सोचा था उस तरह कुछ नहीं हुआ। सूद से काम न चला; असल भी ख़र्च होने लगा। कम्पनी-काग़ज़ों की संख्या दिन-दिन घटने लगी।

एक दिन सबेरे मुख़्तार साहब बैठक में बैठे अपनी दशा के बारे में सोच-विचार कर रहे थे, इसी समय महावत दुलारी को तालाब में नहलाने ले गया। बहुत दिनों से लोग मुख़्तार साहब से कह रहे थे—हाथी की अब क्या ज़रूरत है? उसे बेच डालो। महीने में जो तीस-चालीस रुपये इसके ऊपर ख़र्च होते हैं वे बच जायँगे। किन्तु मुख़्तार साहब उनको जवाब देते थे—बल्कि यह कहो कि तुम्हारे लड़की-लड़के और नाती-पूतों के खिलाने-पिलाने में बहुत रुपये ख़र्च होते हैं। उनमें से एक-आध को न बेच डालो।—इस पर कोई क्या कहता?

हाथी को देखकर मुख़्तार साहब ने सोचा, अगर बीच-बीच में यह हथिनी लोगों को किराये पर दी जाय तो उससे

कुछ आमदनी हो सकती है। उसी समय कागज़-कलम लेकर मुख्तार साहब ने निम्नलिखित मजमून तैयार कर डाला।

किराये पर हाथी

ब्याह के जलूस, दूर जाने-आने आदि कामों के लिए मेरी दुलारी नाम की हथिनी किराये पर दी जायगी। किराया ३) रु० रोज़, हथिनी की ख़ूराक १) रु० और महावत की ख़ूराक ॥)—इस तरह कुल ४॥) रोज़ देने पड़ेंगे। जिन साहबों को ज़रूरत हो, मुझे चिट्ठी लिखें।

जयरामदास (मुख्तार)
मिसिरलेन, रायबरेली।

यह विज्ञापन छपाकर हर एक लालटेन के खम्भे पर, सड़क के पास के पेड़ों पर, और अन्यान्य प्रकाश्य स्थानों में चिपका दिया गया।

विज्ञापन पढ़कर बीच-बीच में लोग किराये पर हथिनी को मँगाते थे, लेकिन महीने में पन्द्रह-बीस रुपये से अधिक आमदनी न होती थी।

मुख्तार साहब का बड़ा पोता बीमार पड़ गया। उसकी दवा और डाक्टर की फ़ीस में पाँच-सात रुपये रोज़ खर्च होने लगे। महीने भर के बाद लड़के की तबियत कुछ अच्छी हुई।

मँझली और छोटी, दोनों बहुओं के गर्भ है। कुछ ही महीनों के बाद और दो जीवों के खाने-पीने का प्रबन्ध करना पड़ेगा।

इधर बड़ी पोती बारह बरस की हो चुकी है। वह ज़रा लम्बे डील की है। इसलिए शीघ्र ही उसका ब्याह किये बिना काम नहीं चल सकता। उसके लिए अनेक लड़के खोजे हैं, लेकिन मन के माफ़िक़ घर-वर कम देख पड़ते हैं। जहाँ मन के माफ़िक़ घर-वर है वहाँ 'दहेज' की तादाद सुन-कर पसीना छूटता है।

कन्या के बाप को इसकी कुछ चिन्ता ही नहीं है। वह चरस-भाँग पीकर, ताश-चौसर खेलकर, हारमोनियम बजा कर अपना समय बिता देता है। जो कुछ चिन्ता है सो इसी साठ बरस के बुड्ढे को है।

अन्त को एक जगह ब्याह पक्का हो गया। लड़का कैनिङ्ग-कालेज में एम० ए० क्लास में पढ़ता है। घर में खाने-पहनने का अच्छा ठिकाना है। उसका बाप दो हज़ार रुपये नगद माँगता है। साथ ही पाँच सौ रुपये का ज़ेवर भी। ढाई हज़ार रुपये हों तो अच्छे ख़ानदान में पढ़े-लिखे लड़के के साथ लाला जयराम की पोती की शादी हो।

कम्पनी-काग़ज़ का बण्डल दिन-दिन दुबला होता जाता है। अब उसमें से ढाई हज़ार निकालना बहुत ही कष्टकर हो गया है। फिर, केवल यही पोती नहीं है—और भी पोतियाँ हैं। उनकी दफ़ा क्या होगा?

इस प्रकार के सोच-विचार में पड़ने से मुख्तार साहब का शरीर दिन-दिन शिथिल होने लगा। एक दिन ख़बर

आई कि छोटे लड़के ने बी० ए० परीक्षा दी थी; परन्तु फेल हो गया।

इष्ट-मित्र कहने लगे—मुख़्तार साहब, हथिनी को बेच डालिए; बेचकर पोती का ब्याह कर दीजिए। बतलाइए, क्या कीजिएगा। अवस्था देखकर ही व्यवस्था की जाती है! आप तो समझदार आदमी हैं—हथिनी की ममता छोड़िए।

मुख़्तार साहब अब इन बातों का कुछ उत्तर नहीं देते। ज़मीन की ओर उदास दृष्टि से देखते-देखते सिर्फ़ सोचा करते हैं और बीच-बीच में लम्बी साँसें लेते हैं।

चैत में, डालामऊ के पास, एक बड़ा भारी मेला लगता है। उसमें बहुत से गाय-बछड़े, घोड़े, हाथी, ऊँट आदि बिकने आते हैं। इष्ट-मित्रों ने कहा—हाथी को मेले में भेज दीजिए, इस समय बिक जायगा। दो हज़ार को ख़रीदा था, अब बड़ा हो गया है—तीन हज़ार रुपये सहज ही मिल जायँगे।

अँगोछे से आँसू पोंछते-पोंछते मुख़्तार साहब ने कहा—तुम लोग ऐसी बात कैसे कहते हो?

इष्ट-मित्रों ने कहा—आप कहते हैं, उसे मैं लड़की की तरह स्नेह करता हूँ। अच्छा, आप ही सोचिए, लड़की क्या हमेशा घर में रक्खी जाती है? लड़की का ब्याह करना पड़ता है और वह सुसराल चली जाती है। रहा यह कि आपने उसे पाला-पोसा है, इससे आपको उस पर कुछ ममता हो गई है। सो ज़रा देख-सुनकर अच्छे आदमी के हाथ बेचिए, जिसमें

जयराम ने कहा,—"दुलारी, जाओ बेटा आओ"। पृ० २३६

उसे सुख मिले ऐसे आदमी के हाथ बेचिए जो आदर से रक्खे, कोई कष्ट न दे।

सोच-विचारकर मुख़्तार ने कहा—तुम सब यह सलाह देते हो तो यही सही। मेले में भेज दो। एक अच्छा ख़रीदार ठीक करो। अगर दो-चार सौ रुपये कम मिलें तो भी मुझे मंज़ूर है।

मेला पन्द्रह दिन रहता है; किन्तु पिछले चार-पाँच दिनों मे ही अच्छा जमाव होता है। मेला शुरू होने के पाँच-छः दिन बाद जाना ठीक हुआ। महावत तो जायगा ही, मुख़्तार का मँझला लड़का भी साथ जायगा।

यात्रा के दिन बहुत सबेरे मुख़्तार साहब उठे। जाने के पहले हथिनी भोजन कर रही है। घर की लड़कियाँ और लड़के आँखों में आँसू भरे बाग़ में उसके पास खड़े हैं। खड़ाऊँ पहनकर जयराम भी वहीं जाकर खड़े हो गये। पहले दिन दो रुपये के बेसन के लड्डू उन्होंने मँगा रक्खे थे। नौकर वह हाँड़ी ले आया। डाली-पत्ते आदि मामूली भोजन समाप्त हो जाने पर मुख़्तार ने अपने हाथ मुट्ठा-मुट्ठा भर लड्डू उसे खिलाना शुरू किया। भोजन कराने के बाद उसके गले के नीचे हाथ फेरते-फेरते भर्राई हुई आवाज़ में उन्होंने कहा—"दुलारी, जाओ बेटा मेला देख आओ।" वृद्ध की आँखों में आँसू भर आये।

हथिनी चली गई। मुख़्तार साहब अपने शून्य हृदय को दोनों हाथों से थामे हुए बैठक के बिछौने पर लेट गये। बहुत

देर तक पड़े रहे बहुओं के विशेष आग्रह और अनुरोध से लाचार होकर स्नान करना पड़ा। नहाकर खाने बैठे, लेकिन थाली में क़रीब-क़रीब सबका सब अन्न पड़ा रहा।

६

पोती के ब्याह की बातचीत पक्की हो गई है। जेठ सुदी दशमी को ब्याह का मुहूर्त बना है। वैशाख लगते ही तिलक चढ़ जायगा। हाथी बिककर रुपया आते ही गहने बनवाने का प्रबन्ध किया जायगा।

लेकिन वैशाख बदी १ के दिन दुलारी घर लौट आई। बिकी नहीं। उतने दाम लगानेवाला ख़रीदार ही नहीं मिला।

दुलारी को लौट आये देखकर आनन्द के कोलाहल से घर भर गया। उस समय किसी के चेहरे पर उसके न बिकने के लिए खेद न था। सबके व्यवहार से यही समझ पड़ा, जैसे खोया हुआ धन फिर मिल गया।

घर के लोग कहने लगे—आहा, दुलारी तो बीमार सी हो गई है। जान पड़ता है, इन दिनों अच्छी तरह खाने को नहीं मिला। यहाँ कुछ दिन इसकी अच्छी खिलाई होनी चाहिए।

आनन्द की पहली लहर उतर जाने पर सबको ख़याल हुआ कि लड़की के ब्याह का अब क्या उपाय होगा?

परोसी इष्ट-मित्र फिर बैठक में जमा हुए। इस बात की आलोचना होने लगी कि इतने बड़े मेले में कोई हाथी का

खरीदार नहीं मिला। एक ने कहा—जाते समय मुख्तार साहब ने कहा था कि जाओ दुलारी, मेला देख आओ। इसी से नहीं बिकी। बूढ़े के मुँह की भाषा मिथ्या नहीं होती।

पूर्वोक्त मेला उठ जाने पर और भी दस कोस के ऊपर रसूलगंज में एक और मेला लगता है। वह सात दिन रहता है। जो जानवर पहले के मेले में नहीं बिकते वे यहाँ जमा होते हैं। यहीं दुलारी को भेजने की सलाह ठहरी।

आज दुलारी फिर मेले जायगी। आज वृद्ध से उसके पास खड़े हुआ नहीं गया। वे उसके पास भी न जा सके। उसी तरह भोजन आदि करने के उपरान्त दुलारी चली गई। पोती ने आकर कहा—बाबा, जाते समय दुलारी रोती थी।

मुख्तार साहब लेटे हुए थे, उठकर बैठ गये। बोले—क्या कहा? रोती थी?

पोती ने कहा—हाँ बाबा, जाते समय उसकी आँखों से टप् टप् आँसू गिरे थे।

वृद्ध फिर ज़मीन पर पड़कर लम्बी साँस लेकर कहने लगे—समझ गई! हाथी की जाति अन्तर्यामी होती है न! वह समझ गई कि इस घर में अब लौटकर न आवेगी।

पोती के चले जाने पर वृद्ध आँखों में आँसू भरकर आप ही आप कहने लगे—जाते समय मैं तेरे सामने नहीं गया सो क्या तेरा अनादर करने के लिए? नहीं बेटा, यह बात नहीं है। तू तो अन्तर्यामी है, तू क्या मेरे मन का हाल नहीं

जानती ? लड़की का ब्याह हो जाय, उसके बाद, तू जहाँ जायगी वहाँ जाकर मैं तुझे देख आऊँगा। तेरे लिए मिठाई ले जाऊँगा—जलेबी-लड्डू ले जाऊँगा। जब तक जियूँगा तब तक तुझे नहीं भूलूँगा। बीच-बीच में जाकर तुझको देख आया करूँगा। तू बुरा न मानना।

७

दूसरे दिन तीसरे पहर एक किसान ने एक चिट्ठी लाकर वृद्ध के हाथ में दी।

पत्र पढ़ते ही वृद्ध के सिर पर वज्र सा गिर पड़ा। मँझले लड़के ने लिखा है—घर से सात कोस पर आकर कल तीसरे पहर दुलारी बहुत बीमार पड़ गई है। वह राह नहीं चल सकती। रास्ते के पास एक आम के बाग में पड़ी हुई है। उसके पेट में किसी तरह का दर्द जान पड़ता है। सूँड़ उठाकर कभी-कभी आर्तनाद कर उठती है। महावत ने अपनी जानकारी के अनुसार रात भर उसकी दवा की है—किन्तु कोई फल नहीं हुआ। जान पड़ता है, दुलारी अब न बचेगी। अगर न बची तो उसे गाड़ने के लिए पास की ज़मीन का बन्दोबस्त करना पड़ेगा। इस कारण आप शीघ्र चले आइए।

घर के भीतर जाकर, चबूतरे पर, पागलों की तरह टहलते-टहलते वृद्ध कहने लगे—मेरे लिए गाड़ी का बन्दोबस्त कर दो।

मैं अभी जाऊँगा। दुलारी बीमार है, दर्द के मारे पड़ी छटपटा रही है। मुझे देखे बिना वह आराम न होगी। मैं अब देर नहीं कर सकता।

उसी समय घोड़े या गाड़ा का बन्दोबस्त करने के लिए आदमी दौड़ा गया। बड़ी मुशकिल से बहुएँ वृद्ध को थोड़ा सा दूध पिला सकीं। रात को दस बजे गाड़ी चली। साथ बड़ा लड़का और वह किसान भी था।

दूसरे दिन सबेरे उस स्थान पर पहुँचकर वृद्ध ने देखा, सब समाप्त हो गया है। हथिनी—पानी भरे बादल के समान श्याम हथिनी—आम के बाग़ के भीतर पड़ी हुई है। आज न वह हिलती है, न डुलती है।

वृद्ध दौड़कर हथिनी की लाश के पास लोट गये। उसके मुख के पास मुख रखकर रोते हुए बारम्बार कहने लगे—रूठकर चली गई बेटा? तुझे बेचने के लिए भेजा था, इसी से तू रूठकर चली गई!

इसके बाद केवल दो महीने और मुख़्तार साहब जीते रहे। अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार, दुलारी जिसके घर गई थी उसके घर वे भी चले गये। लेकिन वादे के माफ़िक़ जलेबी-लड्डू नहीं ले जा सके। आशा है, उस राज्य में जलेबी-लड्डू से लाख गुना मीठी और स्वादिष्ट किसी चीज़ का अक्षय प्रवाह जारी होगा।